

जून, 2015

वर्ष 1 • अंक 2

ISSN 2395-1389

राजघाट

समाधि पत्रिका



स्वच्छता का सन्देश



गांधीजी का ताबीज़

तुम्हें एक जन्तर देता हूँ। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

(मोहनदास करमचन्द गांधी)

ISSN 2395-1389

वर्ष-1, अंक-2, जून, 2015

प्रधान सम्पादक
श्री रजनीश कुमार

सम्पादक
डॉ. रज्जन कुमार

परामर्श मंडल
प्रो. रामजी सिंह
डॉ. शंकर कुमार सान्याल
सुश्री राधाबहन भट्ट
डॉ. राजीव रंजन गिरि

आवरण
संजीव शाश्वती

कैलीग्राफी
धर्मेन्द्र सुशान्त

सहयोग राशि
15 रुपये
50 रुपये वार्षिक
100 रुपये दो वर्ष
200 रुपये पाँच वर्ष

राजघाट समाधि समिति

महात्मा गांधी मार्ग, राजघाट, नई दिल्ली-02
की ओर से श्री रजनीश कुमार द्वारा
मुद्रित व प्रकाशित

लेखकों द्वारा उनकी रचनाओं में प्रस्तुत
विचार एवं दृष्टिकोण उनके अपने हैं,
राजघाट समाधि समिति, नई दिल्ली के
नहीं। समस्त मामले दिल्ली न्यायालय में
ही विचाराधीन।

डिजाइनिंग एवं प्रिंटिंग
चन्दु प्रेस, डी-97, शंकरपुर
दिल्ली-110092

फोन: 011-22526936 / 22424396

विषय सूची

सम्पादकीय	2
स्वच्छता का सन्देश	
स्वच्छ और समर्थ भारत : चिन्तन एवं अनुचिन्तन - डॉ. सुनीता कुमारी	3
स्वच्छता और स्वास्थ्य - डॉ. सुधांशु शेखर	8
गांधी का प्रौद्योगिक-दर्शन - डॉ. हिमांशु शेखर सिंह	16
गांधी का ग्राम-स्वराज - डेजी कुमारी	20
विकास की गांधी अवधारणा : एक विमर्श - नीशु कुमारी	22
सभ्यता-दर्शन : एक विमर्श - सौरभ कुमार चौहान	23
आज के समाज में गांधीजी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त - प्रो. अमीन रतिलाल	24
स्वच्छ एवं समर्थ भारत - डॉ. सुनीता कुमारी चौरसिया एवं डॉ. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी	28
पुस्तक-वार्ता	
राष्ट्र-निर्माण की नैतिक दृष्टि - डॉ. अरुण कुमार भारद्वाज	34
विशेष	
क्रान्ति-शान्ति का अपूर्व संगम - विनोबा भावे	37
Message of sanitation	
The Sarvodaya Samaj of Gandhi : The Challenges before us - Prof. N. Radhakrishnan	45
Role of Educational Institution for Clean India - Dr. Lokanath Mishra	56
Gandhi in the Eyes of a Layman - P. Maruthi	59

सामाजिक दायित्वबोध का सन्देश

‘राजघाट समाधि पत्रिका’ के प्रवेशांक का गणमान्य जनों से लेकर सर्वसाधारण तक ने जिस तरह स्वागत किया, उसने न केवल हमारा उत्साह बढ़ाया है, बल्कि हमारा उत्तरदायित्व भी बढ़ा दिया है। वर्तमान युग में सभ्यता और संस्कृति की जटिलताओं के बीच महात्मा गांधी के विचारों की प्रासंगिकता बतलाने की जरूरत नहीं है, लेकिन यह जानकर सुखद अनुभूति होती है कि लोगों में राष्ट्रपिता के जीवन और कार्यों के प्रति जिज्ञासा निरन्तर बढ़ रही है। नाना समसामायिक संकटों से घिरी मनुष्यता को आज अपना भविष्य महात्मा गांधी के बताए रास्ते पर चलने में ही दिखलाई पड़ता है। वस्तुतः एक समय में कठिन या असम्भव मानकर या फिर अव्यावहारिक समझकर सिर्फ इतिहास की चीज मान लिए गये गांधी-विचार न सिर्फ भारत के लिए, बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए उद्धार के सूत्र साबित हो रहे हैं।

गांधी ने कर्ममय जीवन पर जोर दिया था। जिसमें भौतिक लालसाओं के प्रति संयम और व्यक्तिगत जीवन में भी सामाजिक दायित्वबोध का सन्देश निहित है। यह दायित्वबोध इतना व्यापक है कि इसकी परिधि समाज के सबसे कमजोर आदमी- कतार के आखिरी आदमी तक पहुँचती है। फिर गांधी ने प्रत्येक कर्म को उदात्त आध्यात्मिक भाव के साथ जोड़कर करने पर बल दिया ताकि सच्चे अर्थों में हम वसुधैव कुटुम्बकम् की धारणा को साकार कर सकें। कथनी और करनी का अन्तर उन्हें कतई स्वीकार नहीं था।

गांधीजी मनुष्य के जीवन में उत्पादन, वितरण और उपभोग के बीच सन्तुलन स्थापित करना चाहते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि अनियन्त्रित या असंयमित उपभोग वितरण में विषमता और लूट को प्रेरित करता है। गांधीजी इन सब क्षेत्रों को मर्यादा के बन्धन से सन्तुलित एवं नियन्त्रित करना चाहते थे।

ऐसे महात्मा के स्वच्छ और समर्थ भारत के स्वप्न को यथार्थ में बदलने के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने पूरे राष्ट्र का आह्वान किया है। इस महालक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में कार्य आरम्भ हो चुका है, लेकिन जब तक इसकी प्राप्ति नहीं हो जाती, हमें निरन्तर प्रयत्न करते रहना होगा। इसीलिए पत्रिका के प्रस्तुत अंक में भी हमने गांधीजी के स्वच्छता के सन्देश और राष्ट्र की उन्नति के लिए उसकी अपरिहार्यता को ध्यान में रखते हुए विशेष सामग्री दी है।

इससे पाठकों को राष्ट्रनिर्माण के इस महायज्ञ में सक्रिय होने की न्यूनतम प्रेरणा भी प्राप्त होगी तो यह हमारे लिए सन्तोष की बात होगी।

जय हिन्द

स्वच्छ और समर्थ भारत : चिन्तन एवं अनुचिन्तन

डॉ. सुनीता कुमारी

गांधीजी ने भारत की कल्पना की और उसके लिए कठिन संघर्ष किया। ब्रिटिश राज की पराधीनता से भारत को मुक्ति दिलायी। परन्तु भारत की स्वाधीनता से उनका तात्पर्य केवल ब्रिटिश राज से मुक्ति का नहीं था, बल्कि वह गरीबी, निरक्षरता और अस्पृश्यता जैसी बुराइयों से मुक्ति का सपना देखते थे। वह चाहते थे कि देश के सारे नागरिक समान रूप से आजादी और समृद्धि का सुख पा सकें।¹

महात्मा गांधी एक महान दार्शनिक, समाजसुधारक, शिक्षाशास्त्री तथा प्रयोगकर्ता थे। उन्होंने 'ईश्वर' से लेकर 'परिवार-नियोजन' तक हर बात पर अपने विचार प्रकट किए। वह एक तरफ भारत के प्राचीन मानवीय आदर्शवाद से प्रभावित थे तो दूसरी तरफ व्यवहारवादी भौतिकवाद को भी जीवन के लिए आवश्यक मानते थे। उन्होंने शायद अनजाने एवं प्रातिभ ज्ञान के आधार पर आदर्शवाद से संचालित अध्यात्म और भौतिकवाद की जननी विज्ञान के समन्वय का एक व्यावहारिक प्रयत्न किया है जो न केवल स्वच्छ और समर्थ भारत का पाथेय बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रकाश-स्तम्भ बन गया है। एक समय तक सत्य, अहिंसा महात्माओं के गगनविहारी उपदेश मात्र माने जाते रहे थे, जिन्हें गांधीजी ने समाज-विज्ञान के लोक-धरातल पर कसकर लोक-व्यवहार का उपकरण बनाया और यह स्वच्छ और समर्थ भारत का अभूतपूर्व एवं मनोहारी सिद्धान्त बन गया।²

गांधी चिन्तनधारा सार रूप में कर्म प्रधान एवं मूल्य प्रधान का समन्वय है और यही इसका वैशिष्ट्य है जो स्वच्छ और समर्थ भारत के लिए वरदान बना है। उनके जीवन-दर्शन की जीवन्तता भी विचार एवं प्रयोजनशीलता के अर्थपूर्ण समन्वय का ही परिचायक है। इसी मार्ग के अनुसार वे मानव एवं उसके जीवन के लक्ष्य तथा उद्देश्य की कल्पना करते हैं। क्योंकि उनके अनुसार समाज के पुनर्निर्माण की आधारभूत शर्त स्वयं मानव की पुनर्रचना है। यह सर्वविदित है कि गांधीजी धार्मिक व्यक्ति थे और जैसाकि उन्होंने स्वयं कहा है कि मेरे धर्म का अर्थ साम्प्रदायिकता नहीं, बल्कि नैतिकता है। वे कहा करते थे कि सच्चा धर्म और सच्ची नैतिकता एक दूसरे से अभिन्न रूप से आबद्ध है।³ उनके अनुसार व्यक्ति का नैतिक अनुशासन ही सामाजिक पुनर्निर्माण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। उन्होंने मूलभूत मूल्यों के प्रश्न पर कभी समझौता नहीं किया।

भारत की स्वाधीनता से
गांधीजी का तात्पर्य केवल
ब्रिटिश राज से मुक्ति का
नहीं था, बल्कि वह गरीबी,
निरक्षरता और अस्पृश्यता
जैसी बुराइयों से मुक्ति का
सपना देखते थे।

यह अलग विषय है कि राजनैतिक रणनीति के स्तर पर उन्होंने खुलापन व लचीलापन बनाए रखा, लेकिन यहाँ भी सत्य और अहिंसा सदा उनसे अभिन्नता से जुड़े रहे और घृणा का भाव उनकी मानसिकता को छू नहीं सका।

यथार्थपरक दृष्टिकोण अपनाते हुए अगर हम गांधी विचार का विश्लेषण करें तो हमें यह स्पष्ट पता चल जाएगा कि महात्मा गांधी उस आत्मा के रूप में उपस्थित हुए जिनके चिन्तन में सत्य का शौर्य,

महात्मा गांधी उस आत्मा के रूप में उपस्थित हुए जिनके चिन्तन में सत्य का शौर्य, अहिंसा का शील तथा निर्भीकता का व्यक्तित्व अभूतपूर्व रूप से उजागर हुआ। उनका चिन्तन, जीवन-दर्शन एवं कर्म के प्रति आग्रह का अपने आप में अद्भुत मिश्रण था। यह अहिंसक एवं नैतिक कर्मप्रधान दृष्टिकोण आज के परिवर्तित वातावरण में ही नहीं, अपितु आगामी समय में भी मार्ग-दर्शक बनकर न केवल मानवता की रक्षा करता रहेगा, बल्कि स्वच्छ और समर्थ भारत का आधारस्तम्भ भी होगा।

अहिंसा का शील तथा निर्भीकता का व्यक्तित्व अभूतपूर्व रूप से उजागर हुआ। उनका चिन्तन, जीवन-दर्शन एवं कर्म के प्रति आग्रह का अपने आप में अद्भुत मिश्रण था। यह स्पष्ट एवं स्मरणीय है कि गांधी के विचार जितने तात्कालिक परिवेश की उपज रहे, उतने ही उसे परिवर्तित करने के लिए सन्दर्भिक भी रहे। उनका यह अहिंसक एवं नैतिक कर्मप्रधान दृष्टिकोण आज के परिवर्तित वातावरण में ही नहीं, अपितु आगामी समय में भी मार्ग-दर्शक बनकर न केवल मानवता की रक्षा करता रहेगा

बल्कि स्वच्छ और समर्थ भारत का आधारस्तम्भ भी होगा।

आज मनुष्य के समक्ष विचार की समस्या है और विचार की प्रस्थापना हेतु 'सम्प्रदाय' एवं 'वाद' का निराकरण करना अत्यन्त आवश्यक है। विचार बौद्धिकता की पहचान है। विचार झरने के समान नित्य प्रवाहमान है। इसमें प्रवाह होता है, विकास होता है।

जब विचार पानी के समान जमकर बर्फ बन जाता है, तब वह 'सम्प्रदाय' अथवा 'वाद' बन जाता है तथा उसमें कठोरता एवं कठिनता आ जाती है। अतएव हमें नम्र होकर विचार आरम्भ करना होगा। हम पहले अपने विचार का आरम्भ नम्र होकर स्वयं से करें। यहीं से बौद्धिक अनाग्रह और वैचारिक समन्वय का प्रारम्भ होगा। हमें हमारे समक्ष जितने भी वाद या सम्प्रदाय खड़े मिलें हमें उनका खंडन नहीं, बल्कि समन्वय करना होगा। अतः हम जो विचार करें, वह नम्रतापूर्वक, किसी प्रकार का आग्रह न रखते हुए करें। विचार में पहले आग्रह आता है। आग्रह के उपरान्त आक्रमण आ जाता है, जिसमें हार और जीत की मनोवृत्ति होती है। हमें न तो किसी विचार की पराजय करनी है और न अपने विचार की स्थापना। हमें तो सत्य तक पहुँचना है।

मनुष्य द्वारा ज्ञात सत्य सदा सापेक्षिक होता है, निरपेक्ष कभी नहीं होता। जिस प्रकार एक आत्मा अनेक शरीर में प्रकट होती है, उसी प्रकार सच्चा और पूर्ण धर्म एक ही है, लेकिन मनुष्य द्वारा प्रचारित होने पर वह अनेक हो जाता है। उन्होंने 1934 में लिखा था, "मैं संसार के सब महान धर्मों के मूलभूत सत्य में विश्वास करता हूँ। मूल में वे सब एक हैं और एक-दूसरे के सहायक हैं। उनके अनुसार सब धर्मों का प्रेरक हेतु एक ही है : वह है मनुष्य-जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने की इच्छा। मनुष्य अपूर्ण है, इसलिए सभी धर्म सत्य के अपूर्ण प्रकाशन हैं और उनमें भूल की संभावना है। इस प्रकार कोई भी धर्म नितान्त पूर्ण नहीं है, सभी धर्म समान रूप से अपूर्ण हैं या न्यूनाधिक पूर्ण है। धर्मों की अपूर्णता परम्पराओं पर आधारित किन्तु बुद्धि से असंगत विश्वासों और कृत्यों में अभिव्यक्त होती है। धर्मों की तुलनात्मक श्रेष्ठता का प्रश्न नहीं उठता। इसलिए समाज की प्रगति चाहने वालों को चाहिए कि वह प्रत्येक धर्म का आदर और अध्ययन करे। यह आदरपूर्ण अध्ययन उसे सब धर्मों की एकता समझने में और सर्वधर्म-समानत्व की भावना विकसित करने में सहायक होगा। उसे चाहिए कि वह अपने धर्म के दोषों के प्रति सजग रहे। लेकिन सभी धर्मों में दोष है, इसलिए उसे अपना धर्म न छोड़ना चाहिए। धर्मों की समता की स्वीकृति आवश्यक रूप से धर्म-परिवर्तन के लिए किए जाने वाले प्रचार के विरुद्ध है।"¹⁴

गांधीजी ने अपने आन्दोलन में कभी भी जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के आधार पर भेदभाव नहीं आने दिया। उनके कार्यों, भाषणों तथा व्याख्यानों में सदैव जाति एवं वर्गविहीन समाज की स्थापना का स्वप्न झलकता था। गांधीजी के लिए लोग महत्वपूर्ण थे, न कि जाति, धर्म तथा पृष्ठभूमि। उन्होंने कभी भी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारकों के आधार पर लोगों को समझाने तथा उनकी सहायता करने का प्रयत्न नहीं किया। गांधीजी का मत था कि किसी को भी दूसरों पर अपना मत अथवा विचार नहीं थोपना चाहिए। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि लोग अपने मन से ही अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करेंगे। दूसरों के विचार उन पर प्रभाव नहीं डाल सकते।

गांधीजी का विश्वास था कि स्वयं अपनी सहायता सबसे अच्छी सहायता है। लोग तभी सक्रियता एवं पूर्ण आस्था के साथ काम करेंगे जब वे नियोजन एवं कार्यक्रमों में भाग लेंगे। गांधीजी जब दलितों के साथ कार्य कर रहे होते थे तब उन्हें यह अनुभव कराने का प्रयत्न करते थे कि उनकी भलाई उन्हीं में निहित है। गांधीजी ने आत्मानुशासन को जीवन की शैली माना तथा इसका उन्होंने अपने जीवन में अभ्यास भी किया। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि नैतिक शक्ति के द्वारा बड़े से बड़े साम्राज्य से टक्कर ली जा सकती है और उसे हराया भी जा सकता है। उनके अनुसार सत्य और अहिंसा न केवल व्यक्ति के लिए आवश्यक है बल्कि समूहों, समुदायों तथा राष्ट्रों के विकास का आधार भी है। उनका विचार था कि लक्ष्य साधनों के औचित्य को सिद्ध नहीं करते हैं बल्कि साधन स्वयं महत्वपूर्ण है। गांधीजी ने समाज कल्याण को 'सर्वोदय' के रूप में समझा जिसका तात्पर्य सभी क्षेत्रों में सभी का कल्याण है। लेकिन साथ साथ भारतीय समाज के निर्बल एवं दुर्बल वर्ग के कल्याण पर विशेष बल दिया। इसलिए उन्होंने रचनात्मक कार्यों का शुभारम्भ किया। गांधीजी ने सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए जन आन्दोलन छेड़ा। उन्होंने जनमत तैयार किया तथा जन साधारण के स्तर से कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया।

गांधीजी 'सादा जीवन, उच्च विचार' के समर्थक थे।⁵ उन्होंने न्यासधारिता अथवा ट्रस्टीशिप के अपने सिद्धान्त में यह प्रतिपादित किया कि जिन लोगों के पास अपनी तथा अपने आश्रितों की आवश्यकता से

अधिक धन/वस्तुएँ हैं उन्हें आवश्यकताग्रस्त लोगों की धरोहर के रूप में अपने पास रखना चाहिए और इससे सहायता की आवश्यकता रखने वाले व्यक्तियों की तुरन्त सहायता करनी चाहिए। गांधीजी का दर्शन 'श्रम की महत्ता' पर आधारित है। उनका श्रम की महत्ता में अटूट विश्वास था तथा उनका यह मत था कि जीविकोपार्जन का अधिकार सभी को मिलना चाहिए और इसे साकार करने का वे सदैव प्रयत्न करते रहे। उन्होंने अपने विचारों को दूसरों पर थोपने का प्रयास कभी भी नहीं किया। उनका यह प्रयास था कि लोगों में जागृति आए जिससे वे स्वयं परिवर्तन का प्रयास करें।

ग्राम-स्वराज्य गांधीजी के सपनों के स्वच्छ और समर्थ भारत का एक

महत्वपूर्ण पड़ाव था। उनका मानना था "ग्राम-स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह ऐसा पूर्ण प्रजातन्त्र होगा, जो अपनी महत्व की जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं रहेगा" और फिर भी बहुतेरी दूसरी आवश्यकताओं के लिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा- वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत की तमाम वस्तुएँ, यथा खाद्यान्न के लिए अनाज और कपड़े

ग्राम-स्वराज्य गांधीजी के सपनों के स्वच्छ और समर्थ भारत का एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। उनका मानना था "ग्राम-स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह ऐसा पूर्ण प्रजातन्त्र होगा, जो अपनी महत्व की जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं रहेगा।" एक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत की तमाम वस्तुएँ, यथा खाद्यान्न के लिए अनाज और कपड़े आदि के लिए कपास स्वयं पैदा कर ले।

के लिए अनाज और कपड़े आदि के लिए कपास स्वयं पैदा कर ले। उसके पास सुरक्षित इतनी जमीन होनी चाहिए, जिसमें जानवर चर सकें और गाँव के बड़ों एवं बच्चों के लिए मन बहलाव के साधनों और खेलकूद के मैदान वगैरह का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें ऐसी उपयोगी फसल

बोएगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके। हर एक गाँव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला और सभाभवन रहेगा। पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम होगा। कुओं और तालाबों पर गाँव का पूरा नियन्त्रण होना चाहिए। बुनियादी तालीम के आखिरी दर्जे तक शिक्षा सभी के लिए लाजिमी होगी। जहाँ

मुझे समझ में नहीं आता कि निश्चित शब्दों में समाजवाद की परिभाषा करने के लिए मुझसे क्यों कहा जाता है। मैं केवल यह चाहता हूँ कि सब लोगों को जन्म के समान अवसर मिलने चाहिए तथा अपनी योग्यता के अनुसार काम करने के समान अवसर दिये जाने चाहिए ... गांधीजी के अनुसार मानव जीवन में उत्पादन, वितरण तथा उपभोग के ये तीन कृतियाँ उसके सम्पूर्ण जीवन को नियन्त्रित एवं व्यवस्थित करती हैं। अनियन्त्रित या असंयमित उपभोग वितरण में विषमता और लूट को प्रेरित करता है, उत्पादन की भी कोई मर्यादा नहीं होती, यह असंस्कृत जीवन है।

तक हो सकेगा, गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर किए जाएँगे। जात-पात और क्रमागत अस्पृश्यता जैसे भेद इस ग्राम-स्वराज्य में बिल्कुल नहीं रहेंगे। इसे स्पष्ट करते हुए गांधीजी कहते हैं- ‘धरती न मेरी है, न तेरी है, बल्कि गोपाल की है। यह तो ‘वसुधैवकुटुम्बकम्’, का आदर्श है।’

महात्मा गांधी देश प्रेम को मानव प्रेम मानते थे। गांधीजी किसी भी निश्चित विचारधारा से बँधे हुए नहीं थे और देश की सुख समृद्धि के लिए किसी भी प्रकार की विचारधारा को स्वीकार करने को तत्पर रहते थे। उनके आर्थिक विचारों में राष्ट्रवाद एवं अन्तरराष्ट्रीयवाद,

समाजवाद एवं व्यक्तिवाद का विचित्र मिश्रण है। एक ओर जहाँ उद्योगों के राष्ट्रीयकरण तथा सरकारी हस्तक्षेप एवं नियन्त्रण के पक्ष में थे वहीं दूसरी तरफ देश के विकास की गति को तेज करने के लिए निजी क्षेत्र के महल को भी स्वीकार करते थे। गांधीय विचारधारा के पोषक होते हुए भी वे छोटे

पैमाने के उद्योगों के साथ-साथ बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास करना चाहते थे। वे गांधीय दार्शनिक विचारधारा की सीमाओं में रहकर भारत में औद्योगिक, प्रगतिशील और समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहते थे। वे शान्तिपूर्ण रूप से विकासात्मक ढंग से भारत में पूँजीवादी प्रणाली की बुराइयों को दूर करने के लिए समाजवादी समाज की व्यवस्था लाना चाहते थे। उनका समाजवाद एक विकासशील तथा गतिशील विचार है जो समाज की परिस्थितियों के परिवर्तित होता रहा है। यही कारण है कि उन्होंने समाजवाद को परिभाषा की किसी निश्चित सीमा में बाँधने का प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने एक बार कहा था कि - “मुझे समझ में नहीं आता कि निश्चित शब्दों में समाजवाद की परिभाषा करने के लिए मुझसे क्यों कहा जाता है। मैं केवल यह चाहता हूँ कि सब लोगों को जन्म के समान अवसर मिलने चाहिए तथा अपनी योग्यता के अनुसार काम करने के समान अवसर दिये जाने चाहिए”।⁷

गांधीजी के अनुसार मानव जीवन में उत्पादन, वितरण तथा उपभोग के ये तीन कृतियाँ उसके सम्पूर्ण जीवन को नियन्त्रित एवं व्यवस्थित करती हैं। अनियन्त्रित या असंयमित उपभोग वितरण में विषमता और लूट को प्रेरित करता है, उत्पादन की भी कोई मर्यादा नहीं होती, यह असंस्कृत जीवन है। गांधीजी की अर्थ संस्कृति का सूत्र है- अपरमात्रिक उत्पादन, समान वितरण तथा संयमित उपभोग। उपभोग की आवश्यकता एवं अपेक्षित बचत के लिए पर्याप्त उत्पादन को अपरमात्रिक उत्पादन कहते हैं, यह उत्पादन की मर्यादा है। वितरण ऐसा होना चाहिए कि रोटी, कपड़ा, मकान, पढ़ाई और दवाई, ये पाँच आवश्यकताएँ प्रत्येक व्यक्ति की पूरी होनी चाहिए। अधिकतम और न्यूनतम आय का नियत अनुपात नहीं बिगड़ना चाहिए। संयमित उपभोग से तात्पर्य है स्वस्थ शरीर की आवश्यकता के अनुकूल उपभोग। उपभोग में संयम तथा सादा जीवन गांधीय विचारधारा के प्राण हैं और स्वच्छ व समर्थ भारत की आधारशिला भी।

इसी परिप्रेक्ष्य में गांधीजी द्वारा प्रतिपादित स्वदेशी की अवधारणा एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। स्वदेशी का शाब्दिक अर्थ है “जो अपने देश का हो” अथवा “अपने यहाँ बना हो”।⁸ परन्तु गांधीजी इसे धार्मिक अनुशासन मानते हैं और इसका पालन शारीरिक कष्ट

उठाकर भी करने की सलाह देते हैं। वे इसे जीवन का नियम मानते हैं और उनका विचार है कि यह नियम मनुष्य के मूलभूत स्वभाव में सन्निहित है। स्वदेशी एक आध्यात्मिक आन्दोलन है, जिसमें आत्मा को अपने देश प्राप्ति के लिए लालायित रहना है। शरीर इसका स्थायी निवास नहीं है। अतः स्वदेशी का अर्थ है आत्मा की सांसारिक बन्धन से मुक्ति का प्रयास। स्वदेशी का अर्थ है कि हमें दूसरे देशों की अपेक्षा अपने देश की तथा अपने देश के अन्दर भी दूर के स्थानों की तुलना में अपने निकट के पड़ोसी की सेवा करनी चाहिए। अपने देश और देश के चीजों के प्रति सम्मान और गौरव की भावना रखना ही स्वदेशी का अर्थ है। गांधीजी के अनुसार “आत्ममय बलिदान का तर्कसंगत परिणाम यह है कि व्यक्ति अपने को समाज के लिए बलिदान कर दे।” इस तरह मानव स्वदेशी का पालन कर समाज, देश और विश्व की सेवा कर सकता है। स्वदेशी से गांधीजी का तात्पर्य भारतीय संस्कृति में व्याप्त आध्यात्मिक शिक्षाओं में विश्वास के अनुरूप जीवन बिताने और प्रगति करने में निहित मानते हैं। ग्राम्य प्रधान और कृषि प्रधान जीवन व्यतीत करना ही आज के वातावरण में स्वदेशी है। स्वदेशी जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है।

अस्पृश्यता निवारण एवं दलित उत्थान गांधीजी के सपनों के स्वच्छ एवं समर्थ भारत का महत्वपूर्ण आयाम है। प्रत्येक भारतीय को अस्पृश्यता को एक सामाजिक कलंक मानकर इसके निवारण हेतु प्रयास करना चाहिए। इसके पीछे भी गांधीजी आध्यात्मिक तत्व को मूल मानते हैं। सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की सन्तान हैं, इसलिए गांधीजी का अस्पृश्यता सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि मानव-मानव के बीच के भेद को मिटा देना चाहिए। अतः प्रत्येक को अपने समान मानकर वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा आप उनसे स्वयं के लिए अपेक्षा करते हैं। किसी समाज का विकास इस मूलमन्त्र को अपनाकर कर पाना ही सम्भव है। गांधीजी का ही प्रयास है कि आज भारत में दलित की अवस्था में सुधार है और आज दलित का आत्मविकास जागृत हो रहा है।

गांधीजी नारी शिक्षा और नारी स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे। वह कहा करते थे, मेरी सबसे बड़ी आशा नारियों पर ही आधारित है। उन्हें अपने नराकीय जीवन से मुक्ति प्राप्त करने में सहायक की

आवश्यकता है, उन्हें उनकी विशिष्ट प्रवृत्तियों तथा जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए। गांधीजी का विश्वास था कि अपनी प्रकृति के कारण ही नारी छोटे बच्चों के शिक्षण-कार्य के लिए सर्वोत्तम योग्यता रखती है।⁹ इसके अतिरिक्त गांधीजी अहिंसक समाज में स्त्रियों को भी दबाकर रखने की स्थिति स्वीकार्य नहीं है। गांधीजी के शब्दों में “अहिंसा पर आधारित जीवन-योजना में स्त्रियों को अपने भाग्य निर्धारण को वही अधिकार है जो पुरुषों को है।” गांधीजी चाहते थे कि स्त्रियों की परम्परागत और वैधानिक स्थिति में इस प्रकार सुधार किया जाए कि वे पुरुषों के साथ समानता के स्तर पर आ जाएँ और सेवा कार्य में उनकी वास्तविक सहायक बन सकें।

सन्दर्भ - संकेत

- 1 महात्मा गांधी (2008) : मेरे सपनों का भारत, नयी दिल्ली, राजपाल प्रकाशन, सारांश
- 2 रामजी सिंह (2010): भारतीय दर्शन और धर्म चिन्तन एवं अनुचिन्तन, दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस पृ.8
- 3 यंग इडिया, 14.10.1926
- 4 एम.के. मिश्र एवं कमल दाधीच (2011): गांधी का आर्थिक चिन्तन दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस पृ.159
- 5 हरिजन, 24.2.1946
- 6 यंग इडिया, 2.1.1937
- 7 एम.के. मिश्र एवं कमल दाधीच (2011): गांधी का आर्थिक चिन्तन, दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस पृ.97
- 8 बसन्त कुमार लाल (1991): समकालीन भारतीय दर्शन, दिल्ली, मोतीलाल इनारसीदास पृ.194
- 9 सीताराम शर्मा (2011): भारत में आधुनिक शिक्षा का विकास , दिल्ली, करन पेपरबैक्स पृ.202

संपर्क:

विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
बी.एस.एम. पी.जी. कॉलेज,
रुड़की-247667
मो. - 09412160247

स्वच्छता और स्वास्थ्य

डॉ. सुधांशु शेखर

स्वस्थ शरीर का अर्थ
मोटा-तगड़ा शरीर नहीं है,
अर्थात् इसमें पहलवानों या
अतिशय दौड़ने-कूदने वालों
का समावेश नहीं है। वरन,
इसका आशय व्याधि रहित
शरीर से है

महात्मा गांधी की दृष्टि में शरीर, मन और आत्मा की सामंजस्यपूर्ण स्थिति ही स्वास्थ्य है। इस स्थिति में व्यक्ति सभी प्रकार की रूग्णताओं से मुक्त होता है और उसके सभी अंग-प्रत्यंग सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित ढंग से कार्य करते हैं। दूसरे शब्दों में, यह वह आदर्श स्थिति है, जिसमें शरीर स्फूर्तिवान, मन प्रसन्न एवं आत्मा मुदितापूर्ण होती है और दसों इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ, यथा-हाथ, पाँव, मुँह, जननेन्द्रिय एवं गुदा और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, यथा-आँख, नाक, कान, जिह्वा एवं त्वचा) और मन (ग्यारहवीं इन्द्रिय) का कार्य-व्यवहार सम्पूर्ण (सम्यक्) रूप से चलता है।¹

गांधी का कहना है कि स्वस्थ शरीर का अर्थ मोटा-तगड़ा शरीर नहीं है, अर्थात् इसमें पहलवानों या अतिशय दौड़ने-कूदने वालों का समावेश नहीं है। वरन, इसका आशय व्याधि रहित शरीर से है, अर्थात् वैसा शरीर जो सामान्य काम कर सके। दूसरे शब्दों में- “जो मनुष्य बगैर थकान के रोज दस-बारह मील चल सकता है, जो बगैर थकान के सामान्य मेहनत-मजदूरी कर सकता है और सामान्य खुराक पचा सकता है...।”²

गांधी जोर देकर कहते थे कि शरीर मात्र मल-मूत्र की खान नहीं है, वरन यह आत्मा का मन्दिर है। इसलिए, हमें हमेशा अपने शरीर को स्वच्छ एवं पवित्र बनाए रखना चाहिए। इसकी रक्षा के लिए हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिससे यह सेवार्थ का पालन पूरी तरह से कर सके। वास्तव में, यह शरीर ईश्वर का है। ईश्वर ने यह हमें थोड़े समय के लिए स्वच्छ एवं निरोग रखने हेतु और सेवा के निमित्त दिया है। इसलिए, हम इसके ट्रस्टी हैं, मालिक नहीं। हमें ट्रस्टी या रक्षक के रूप में बहुत सावधानी रखनी चाहिए। हमें शरीर का अच्छा से अच्छा उपयोग करना है। हम शरीर के बारे में चिन्ता तो नहीं करें, लेकिन यथासम्भव इसकी देखभाल अवश्य करें।³ गांधी के शब्दों में- “हमें शरीर का अन्तराय भी नहीं चाहिए, अर्थात् शरीर रहे या जाए, इस बारे में हमें तटस्थ रहना चाहिए। मन को इस तरह का शिक्षण कर सकें, तो हम शरीर को विषय-भोग का साधन तो कभी नहीं बनाएँगे। हम अपनी शक्ति एवं ज्ञान के अनुसार अपने शरीर का सदुपयोग सेवा के लिए, ईश्वर को पहचानने के लिए, उसके जगत को जानने के लिए और उनके साथ ऐक्य साधने से लिए करेंगे।”⁴

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मनुष्य का शरीर एक अद्भुत और सम्पूर्ण यन्त्र है। जब वह बिगड़ जाता है, तो बिना किसी उपचार या दवा के स्वयं भी अपने को स्वच्छ एवं निरोग बना लेता है, बशर्ते की उसे ऐसा करने का मौका दिया जाए।⁵ अगर हम अपनी भोजन की आदतों में संयम का पालन नहीं करते, या हमारा मन आवेश, चिन्ता आदि से ग्रसित होता है, तो हमारा शरीर अपने अन्दर की सारी गन्दगियों को बाहर नहीं निकाल सकता, इससे शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शरीर एवं मन एक-दूसरे से गहरे जुड़े हैं। गांधी तो यहाँ तक कहते थे- “मनुष्य जाति के लिए साधारणतः स्वास्थ्य का पहला नियम यह है- ‘मन चंगा, तो शरीर भी चंगा’। स्वच्छ एवं निरोग शरीर में निर्मल एवं निर्विकार मन का वास होता है, यह एक स्वयंसिद्ध सच्चाई है। मन और शरीर के बीच अटूट सम्बन्ध है। यदि मन निर्मल एवं निर्विकार यानी निरोग हो, तो वह हर तरह की हिंसा से मुक्त हो जाएगा, फिर हमारे हाथों तन्दरूस्ती के नियमों का सहजभाव से पालन होने लगेगा और किसी विशेष प्रयास के बिना ही हमारा शरीर तन्दरूस्त हो जाएगा।”⁶

गांधी ने शारीरिक अस्वच्छता एवं दुर्बलता की अपेक्षा नैतिक अस्वच्छता एवं दुर्बलता को दूर करने पर अधिक बल दिया। उनकी दृष्टि में व्यक्ति एवं समाज को कोढ़ जैसी शारीरिक बीमारी की अपेक्षा शराब, जुआ, व्यभिचार या समाज में व्याप्त ऐसी ही अन्य बुराइयों से अधिक खतरा हैं। उन्होंने साफ-साफ कहा- “शारीरिक आरोग्य का जीवन में महत्व गौण है, क्योंकि शारीरिक क्षति को तो आदमी सह भी लेता है, लेकिन आत्मा की हुई क्षति को नहीं। इसलिए, आत्मा के आरोग्य पर अधिक ध्यान देना चाहिए।”⁷ उन्होंने जोर देकर कहा- “हमें शरीर के बदले आत्मा के चिकित्सकों की जरूरत है।”⁸ पूर्ण स्वास्थ्य शरीर और आत्मा की साम्यावस्था है। लेकिन, इस अवस्था को प्राप्त करना काफी कठिन है। गांधी ने स्वयं लिखा है- “ऐसी साम्यावस्था प्राप्त करना वास्तव में काफी कठिन है। अन्यथा, मैं इसे प्राप्त कर चुका होता। क्योंकि, मेरी आत्मा इस बात की साक्षी है कि मैं इस स्थिति की प्राप्ति के लिए कोई भी कष्ट उठाने को तैयार हूँ।”⁹

आहार : जीवन के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए समुचित आहार की आवश्यकता होती है। मनुष्य-शरीर

को स्नायु बनाने वाले, गर्मी देने वाले, चर्बी बढ़ाने वाले, क्षार देने वाले और मल निकालने वाले द्रव्यों की आवश्यकता होती है। गांधी सभी मनुष्यों को स्वच्छ समुचित एवं संतुलित आहार सहज उपलब्ध कराने पर जोर देते थे। लेकिन, उनकी स्पष्ट हिदायत है- ‘हमें जीने के लिए खाना चाहिए, न कि खाने के लिए जीना चाहिए।’ इसके लिए उन्होंने अपने एकादश व्रत में ‘अस्वाद’ को प्रमुख स्थान दिया और स्वाद के चक्कर में फँसकर स्वास्थ्य को बर्बाद करने के विरुद्ध चेतावनी दी। साथ ही यह भी कहा कि आहार औषधि है और हमें उसे औषधि की तरह ही उचित मात्रा में लेना चाहिए- न ज्यादा और न कम। उनके शब्दों में- “हमें सब खुराक औषधियों के रूप में लेनी चाहिए, स्वाद की खातिर हरगिज नहीं।”¹⁰

गांधी पूर्ण शाकाहार के पक्षधर थे और सामान्यतः अंडे एवं बाहरी दूध (माँ के दूध के अतिरिक्त) लेने का भी विरोध करते थे। लेकिन, उन्होंने शरीर को बचाए रखने के लिए दूध और दूध से बने पदार्थों, यथा- दही, मक्खन आदि के सेवन की इजाजत दी है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि गांधी ने तीन बार से अधिक खाने की मनाही की है और बार-बार खाते रहने को अमाशय के लिए हानिकार बताया है। इसके अलावा उन्होंने ज्यादा मसाले, चाय, कॉफी, कोको, शराब, तम्बाकू, मादक पदार्थ आदि से परहेज करने की हिदायत दी है और सप्ताह में कम-से-कम एक दिन उपवास रखने को आरोग्य की दृष्टि से जरूरी माना है।

मनुष्य जाति के लिए साधारणतः स्वास्थ्य का पहला नियम यह है- ‘मन चंगा, तो शरीर भी चंगा’। स्वच्छ एवं निरोग शरीर में निर्मल एवं निर्विकार मन का वास होता है, यह एक स्वयंसिद्ध सच्चाई है। मन और शरीर के बीच अटूट सम्बन्ध है। यदि मन निर्मल एवं निर्विकार यानी निरोग हो, तो वह हर तरह की हिंसा से मुक्त हो जाएगा, फिर हमारे हाथों तन्दरूस्ती के नियमों का सहजभाव से पालन होने लगेगा और किसी विशेष प्रयास के बिना ही हमारा शरीर तन्दरूस्त हो जाएगा।

विहार : गांधी यह मानते थे कि रोग के कारण को रोकना पहला इलाज है और इस इलाज के लिए शुद्ध एवं सन्तुलित आहार के साथ-साथ सम्यक विहार का भी काफी महत्व है। इसके अन्तर्गत स्वच्छता, श्रम एवं संयम की बातें शामिल हैं। हमारे शास्त्रों में कहा गया है- ‘स्वच्छता ही देवत्व है’। इसलिए, हमें अपने तन, मन एवं आत्मन को स्वच्छ एवं पवित्र बनाने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन, अपनी स्वच्छता के साथ-साथ पास-पड़ोस एवं गाँव-समाज की स्वच्छता भी जरूरी है। गांधी ने कहा है- “आपका पानी, अन्न और हवा ये सब शुद्ध होना ही चाहिए। किन्तु, केवल अपने तक स्वच्छता रखने से हमें सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। जो स्वच्छता आप स्वयं के बारे में रखना चाहते हैं, उस स्वच्छता का प्रचार-प्रसार अपने आस-पास भी कीजिए।”¹¹

गांधी का सम्पूर्ण जीवन-दर्शन और विशेषकर एकादश व्रतों एवं रचनात्मक कार्यक्रमों में हम उक्त बातों को देख सकते हैं। इस सन्दर्भ में गांधी-जीवन का एक प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एक बार गांधी रवीन्द्रनाथ टैगोर के आमन्त्रण पर शान्ति-निकेतन गए। उनके लिए शान्ति-निकेतन के बीचो-बीच एक कुटिया बनायी गयी। गांधी उस कुटिया में ही रुके।

दूसरे दिन उनको शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों को सम्बोधित करना था। नियत समय पर गांधी गुरुदेव के साथ मंच पर गये। गांधी ने सबों का अभिवादन किया और बिना कुछ बोले मंच से नीचे उतरकर कुछ दूरी पर जमा कूड़े को साफ करने लगे। यह देखकर सभी उपस्थित व्यक्ति भी सफाई में लग गये। तब से शान्ति निकेतन में प्रत्येक वर्ष गांधी पुण्याह सप्ताह मनाया जाता है। उस दौरान सप्ताह भर शान्ति निकेतन के शिक्षक एवं शिक्षार्थी विशेष रूप से स्वच्छता अभियान चलाते हैं।

गांधी यह मानते थे कि प्रायः शारीरिक श्रम को हेय मानने के कारण भी लोग अस्वच्छता की दिशा में बढ़ते

चले जाते हैं। इसलिए, वे स्वच्छता के साथ-साथ शारीरिक श्रम पर काफी जोर देते थे और कहते थे कि जो बिना श्रम के खाता है, वह चोर है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि गांधी के लिए ‘श्रम’ का अर्थ गुणवत्तापूर्ण एवं उत्पादक कार्यों से था, न कि घर बैठे साइकिलिंग करने या जिम जाकर बॉडी बिल्डिंग से। अलबत्ता वे तो अखाड़े (व्यायामशालाओं) की कसरतों को विकारवर्द्धक मानते थे, क्योंकि उसके परिणाम-स्वरूप साधारणतः शरीर में गर्मी बढ़ती है और भोजन एवं भोग की शक्ति वेगवान हो जाती है। अतः, गांधी कठोर व्यायाम की बजाय श्रम और आसन एवं प्राणायाम करने की सलाह देते थे। उन्होंने लिखा है- “...आसन एवं प्राणायाम सात्विक व्यायाम माने जा सकते हैं; क्योंकि इन व्यायामों का प्रधान उद्देश्य शरीर को भोगी नहीं, बल्कि शुद्ध बनाना है और इनसे कई बीमारियाँ भी दूर होती हैं।”¹²

गांधी-दर्शन में स्वच्छता एवं श्रम के साथ-साथ संयम का भी काफी महत्व है। संयम के अन्तर्गत एकादश व्रतों (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, आस्वाद, अस्पृश्यता-निवारण, शारीरिक श्रम, सर्वधर्म समभाव एवं स्वदेशी) के पालन की बातें शामिल हैं। लेकिन, यहाँ विशेषरूप से ब्रह्मचर्य व्रत की चर्चा लाजमी है, जिस पर गांधी ने कुछ ज्यादा जोर दिया है। ब्रह्मचर्य का सामान्य अर्थ यौन सम्बन्ध का त्याग और वीर्य-संग्रह माना जाता है। लेकिन, इसका वास्तविक अर्थ ब्रह्म (या ईश्वर) की प्राप्ति के लिए चर्चा है। मन एवं जननेन्द्रिय सहित अन्य सभी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने से ब्रह्मचर्य की प्राप्ति में सहायता मिलती है। जाहिर है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य मात्र वीर्यरक्षण तक ही सीमित नहीं है, लेकिन इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि वीर्यरक्षण व्यर्थ है। बल्कि, गांधी तो यहाँ तक कहते थे कि वीर्यरक्षण के बगैर पूर्ण ब्रह्मचर्य असम्भव है और आरोग्य की रक्षा भी अशक्य ही है। उन्होंने ब्रह्मचर्य को नये अर्थ दिये और कहा कि विवाहित अवस्था में भी इसका पालन होना चाहिए। उन्होंने जोर देकर कहा- “जिस वीर्य में दूसरे मनुष्य को पैदा करने की शक्ति है, उस वीर्य का व्यर्थ स्खलन होने देना महान अज्ञानता की निशानी है। वीर्य का उपयोग भोग के लिए नहीं, वरन मात्र प्रजोत्पत्ति के लिए है। यह हम पूरी तरह समझ लें, तो विषयासक्ति के लिए जीवन में कोई स्थान ही नहीं रह जाएगा। फिर, स्त्री-पुरुष

संग की खातिर नर-नारी दोनों जिस तरह अपना सत्यानाश करते हैं, वह बन्द हो जाएगा...।”¹³

प्राकृतिक उपचार : गांधी की स्पष्ट मान्यता थी कि प्राकृतिक (नैसर्गिक) उपचारों का जैसा नाम है, वैसा ही उनका गुण भी है। क्योंकि, ये कुदरती हैं, इसलिए सामान्य मनुष्य भी निश्चित होकर उनका उपयोग कर सकता है।¹⁴

वास्तव में, यह एक आदर्श जीवन-पद्धति है। इसमें केवल रोगों के समुचित उपचार की कामना नहीं है, वरन् ऐसी जीवनशैली को अपनाने की प्रेरणा भी है, जिससे बीमारियों के लिए कोई गुन्जाइश ही नहीं रहे। जाहिर है कि यह चिकित्सा एवं स्वास्थ्य-विज्ञान की सर्वोत्तम पद्धति है। यह इलाज सबके घर में है। इसके लिए उपचार करने वाले से सलाह की भी जरूरत नहीं है। यह बिल्कुल आसान है और इसे सभी व्यक्ति को सीख लेना चाहिए।¹⁵

लेकिन, दुर्भाग्य से प्राकृतिक उपचारों की पद्धति हाशिये पर चली गयी है और आधुनिक ऐलोपैथ का साम्राज्य कायम हो गया है। ऐलोपैथी को बड़े पैमाने पर सरकारी सहायता मिलती है, उसका अपना सुव्यवस्थित शास्त्र है, अपने बड़े-बड़े संस्थान हैं और प्रचार-प्रसार के विपुल साधन भी। इन सब चीजों के दम पर ऐलोपैथी ने चिकित्सा के क्षेत्र में काफी उपलब्धियाँ भी हासिल की हैं और इसमें कार्यरत डॉक्टरों के मन में एक अभिमान-सा रहता है। इसके विपरीत प्राकृतिक उपचार की पद्धति (नेचुरोपैथी) उपेक्षित है, उसके शास्त्रीय ज्ञान के संरक्षण एवं संवर्द्धन की दिशा में कुछ खास नहीं हो पा रहा है और उस दिशा में लगे लोगों में संघशक्ति का भी घोर अभाव है। एक खास चिन्ता की बात यह भी है कि यह पद्धति अपने स्वाभाविक गुणकर्म को विकसित करने की बजाय ऐलोपैथी की नकल करने में लग गई है। इस क्रम में इससे जुड़े कुछ लोग अविश्वसनीय दावे करके अपनी तो जगहँसाई करते ही हैं, नेचुरोपैथी की साख को भी नुकसान पहुँचाते हैं। ऐसे में गांधी नेचुरोपैथी के पुनरोत्थान हेतु इस क्षेत्र में अत्यन्त तेजस्वी मनुष्य को आगे आने की जरूरत बताते हैं, जो इसके दोनों पहलुओं, यथा- ईश्वरीय शक्ति एवं तत्वीय प्रभाव का साक्षात्कार कर चुके हों और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करने में सक्षम हों।

ईश्वरीय चमत्कार : ईश्वरीय श्रद्धा प्राकृतिक चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण अंग है। वास्तव में, यह

शक्ति जो कर सकती है, सो दूसरी कोई शक्ति नहीं कर सकती। जब मनुष्य में इस अदृश्य शक्ति के प्रति पूर्ण जीवित श्रद्धा पैदा हो जाती है, तब उसके शरीर में भीतर परिवर्तन होता है और वह पूर्ण निरोग एवं पवित्र बन जाता है। इसके लिए गांधी ने ‘रामनाम’ के जाप की सलाह दी है। यहाँ ‘रामनाम’ मात्र सांकेतिक है, रोगी (व्यक्ति) अपनी श्रद्धानुसार ऊँ, खुदा, अल्ला, गॉड किसी भी नाम का जाप कर सकता है। ऐसी मान्यता है कि नाम की शक्ति अपना चमत्कारिक प्रभाव छोड़ती है और चरक, वाग्भट एवं धन्वन्तरी आदि प्राचीन ऋषि-मुनियों ने भी इसके महत्व को प्रतिपादित किया है।

तत्वीय प्रभाव : गांधी यह मानते थे कि शरीर जगत का एक छोटा-सा नमूना है। जो जगत में है, वह शरीर में है और जो जगत में नहीं है, वह शरीर में भी नहीं है। इसलिए, यदि हम शरीर को पूर्णतया पहचान सकें, तो हम जगत को भी सहज ही पहचान लेंगे। लेकिन, यह काम काफी कठिन है। फिर भी इतना तो सभी मानते हैं कि मानव शरीर सामान्यतः पंचभूत, यथा- पृथ्वी (मिट्टी), जल (पानी), पावक (अग्नि), गगन (आकाश) और समीर (वायु) से बना है। गांधी कहते थे कि मनुष्य का पुतला जिन चीजों से बना है, उन्हीं से, वह इसका इलाज

दूँढे, अर्थात् पंचतत्व ही प्राकृतिक चिकित्सा (नैसर्गिक उपचार) के साधन हैं।¹⁶

i. पृथ्वी (मिट्टी) : गांधी ने अपने जीवन में प्राकृतिक चिकित्सा के जो सैकड़ों सफल प्रयोग किए, उनमें उन्होंने मिट्टी का एक तरह से सर्वाधिक इस्तेमाल किया। उन्होंने स्वयं अपने कब्ज का इलाज भी मिट्टी की एक विशेष पट्टी को रात्रि में अपने पेट पर रखकर किया। वह पट्टी तीन ईंच चौड़ी, छह ईंच लम्बी और आधा ईंच मोटी होती थी। इसके अलावा सरदर्द, फोड़ा-फुंसी, बिच्छु डंक, सख्त बुखार एवं टायफाइड

ईश्वरीय श्रद्धा प्राकृतिक चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण अंग है।

वास्तव में, यह शक्ति जो कर सकती है, सो दूसरी कोई शक्ति नहीं कर सकती। जब मनुष्य में इस अदृश्य शक्ति के प्रति पूर्ण जीवित श्रद्धा पैदा हो जाती है, तब उसके शरीर में भीतर परिवर्तन होता है और वह पूर्ण निरोग एवं पवित्र बन जाता है।

आदि में भी मिट्टी का प्रयोग फायदेमन्द रहता है। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि मिट्टी न तो बहुत चिकनी होनी चाहिए, न ही बिल्कुल रेतीली या खाद वाली और उसे खूब अच्छी तरह से सुखाकर एवं साफ करके ही प्रयोग में लाना चाहिए।¹⁷

ii. जल (पानी) : प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति में जल के प्रयोग की परंपरा काफी पुरानी है और गांधी ने भी इस पर काफी विचार किया है। उनके विचारों से ऐसा लगता है कि वे विशेष रूप से 'क्युने-बाथ' के प्रति काफी आकर्षित थे। 'क्युने-बाथ' की दो विधियाँ हैं- 'मध्यबिन्दु कटि-स्नान' और 'घर्षण-स्नान'। एक, 'मध्यबिन्दु कटि-स्नान' में व्यक्ति को खुले कमरे में रखे ठंडे पानी के टब में पैर को पानी से बाहर रखकर बैठ जाना चाहिये और पाँच मिनट से लेकर तीस मिनट तक

यदि हम सूर्य के प्रकाश का पूरा उपयोग करें, तो हम पूर्ण स्वच्छता एवं स्वास्थ्य का अनुभव कर सकते हैं। जैसे हम पानी का स्नान करके साफ होते हैं, वैसे ही सूर्य-स्नान करके भी हम साफ एवं तंदरुस्त हो सकते हैं।

पैर पर नरम तौलिए से धीरे-धीरे घर्षण करना चाहिए। पुनः, स्नान के बाद गीले हिस्से को सुखाकर बिस्तर में आराम से सो जाना चाहिए। यह स्नान सखा बुखार, कब्जियत, अजीर्ण आदि रोगों में लाभकारी है और इससे शरीर में स्फूर्ति भी आती है। दूसरा, 'घर्षण-स्नान' में पानी

के टब में एक स्टूल रखकर उस पर बैठ जाना चाहिए (स्टूल की बैठक पानी की सतह से थोड़ी ऊँची हो) और जननेन्द्रिय के सिरे पर भीगे हुए नरम रूमाल से धीरे-धीरे घर्षण करना चाहिए। इस स्नान से जननेन्द्रिय को साफ-सुथरा रखने और ब्रह्मचर्य के पालन में मदद मिलती है।¹⁸

इसके अलावा गांधी ने 'चादर-स्नान' की भी चर्चा की है। इसके अन्तर्गत मोटे कम्बल पर भीगी हुई, सूती चादर बिछायी जाती है और उस पर रोगी (व्यक्ति) को सुला दिया जाता है। उसका सिर कम्बल के बाहर तकिये पर रखा जाता है और सिर पर गीला निचोड़ा हुए तौलिया रखकर शरीर के अन्य हिस्से को अच्छी तरह से चद्दर एवं कम्बल से ढँक दिया जाता है। यह विधि बुखार (निमोनिया एवं टाइफाइड) के अलावा

घमौरी, पित्ती, आमवात, खुजली, खसरा या चेचक आदि में भी लाभकारी है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन विशिष्ट विधियों के अलावा सामान्य रूप से भी पानी का इस्तेमाल कर कई बीमारियों में राहत मिल सकती है। गांधी ने तो विशेषकर गर्म पानी का स्वच्छता एवं स्वास्थ्य (आरोग्य) की दृष्टि से खूब इस्तेमाल किया। वे मानते थे कि गर्म पानी जीवाणुनाशक है और उसके समुचित प्रयोग से कई तरह के घावों को ठीक किया जा सकता है। साथ ही भाप के रूप में भी पानी काफी गुणकारी है। इसके इस्तेमाल से सर्दी, कँपकपी, गठिया, मोटापा आदि बीमारियों में लाभ मिलता है।

iii. पावक (अग्नि) : गांधी ने पावक (अग्नि) या तेज को भी प्राकृतिक चिकित्सा का महत्वपूर्ण साधन माना है। जैसा कि हम जानते हैं कि अग्नि (तेज) का सर्वप्रमुख स्रोत सूर्य है और उसी से पूरी सृष्टि को ऊर्जा मिलती है। यदि हम सूर्य के प्रकाश का पूरा उपयोग करें, तो हम पूर्ण स्वच्छता एवं स्वास्थ्य का अनुभव कर सकते हैं। जैसे हम पानी का स्नान करके साफ होते हैं, वैसे ही सूर्य-स्नान करके भी हम साफ एवं तंदरुस्त हो सकते हैं। गांधी ने सूर्य-स्नान को शारीरिक दुर्बलता, चेहरे के फीकापन और पाचनतन्त्र की गड़बड़ी में भी लाभदायक बताया है।¹⁹

iv. गगन (आकाश) : सामान्यतः हम पृथ्वी के चारों ओर घिरे आसमानी शामियाने को आकाश कहते हैं। लेकिन, सिर्फ वही आकाश नहीं है। बल्कि, जहाँ कहीं भी खालीपन या शून्य है, वह आकाश है। इस अर्थ में आकाश हर जगह मौजूद हैं- हमारे बाहर भी और अन्दर भी। जिस तरह हमारे आसपास आकाश हैं, उसी तरह हमारे भीतर भी वह है। चमड़ी के एक-एक छिद्र में और दो छिद्रों के बीच की जगह में भी आकाश है। इसलिए, ऐसे महान तत्व (आकाश) का अभ्यास और उपयोग जितना हम करें, उतना ही अधिक स्वस्थ हो सकेंगे। इसके लिए हमें जीवन में उत्तरोत्तर 'खालीपन' (आकाश) को बढ़ाना होगा, अर्थात् अपनी आवश्यकता कम करनी होगी। हम उतना ही आहार लें, जितना आवश्यक हो, आवश्यकता से अधिक कपड़े नहीं पहनें और अपने आवास को भी कबाड़खाना नहीं बनाएँ। गांधी ने स्वयं लिखा है- "मैंने अपने जीवन में उत्तरोत्तर खालीपन को बढ़ाकर आकाश के साथ सीधा सम्बन्ध बढ़ाया है। ...जैसे-जैसे यह सम्बन्ध बढ़ता गया, वैसे-वैसे मेरा आरोग्य भी बढ़ता गया, मेरी शान्ति बढ़ती गयी,

सन्तोष बढ़ता गया और धनेच्छा बिल्कुल मन्द पड़ती गई।²⁰ संक्षेप में, गांधी की तरह जो भी आकाश के साथ सम्बन्ध जोड़ता है, उसके पास कुछ नहीं रहने पर भी सब कुछ होता है।

v. वायु (हवा) : हवा एक तरह से सर्वव्यापक है और जीवन के लिए इसकी सर्वाधिक आवश्यकता है। जहाँ साँस लेने के लिए हवा नहीं हो, वहाँ जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। लेकिन, दुर्भाग्य यह है कि आधुनिक जीवनशैली ने हमें स्वच्छ हवा से काफी दूर कर दिया है। एक तो विभिन्न अमानवीय क्रियाकलापों ने वायु-प्रदूषण का खतरा उत्पन्न किया है। दूसरा, हम अक्सर अपने आवास में वायु एवं प्रकाश के प्रवेश को बाधित कर स्वच्छता एवं स्वास्थ्य दोनों को खतरे में डाल देते हैं। गांधी का कहना है कि हमें अन्य प्राकृतिक तत्वों के साथ-साथ हवा का भी सम्यक उपयोग करना चाहिए। उनके शब्दों में- “...यदि हम बचपन से ही हवा का डर न रखें, तो शरीर को हवा सहन करने की आदत हो जाती है और जुकाम, बलगम इत्यादि रोगों से हम बच जाते हैं।”²¹

डॉक्टर और अस्पताल : गांधी यह मानते थे कि प्रायः सभी रोग हमारे गफलत या गलत जीवनशैली के परिणाम हैं। इसलिए, अस्वच्छता एवं अस्वास्थ्य से बचने का सबसे अच्छा तरीका अपने जीवनशैली में सुधार लाना है। लेकिन, यदि हम अपनी जीवनशैली को बदले बगैर डॉक्टर से अपना इलाज कराने लगते हैं, तो इसका घातक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि किसी को बहुत ज्यादा खा लेने के कारण बढ़हजमी या अजीर्ण हो जाये, फिर वह डॉक्टर के पास जाए और डॉक्टर उसे दवा दे। वह डॉक्टर की दवा खाकर चंगा हो जाए और दुबारा उसी तरह खूब खाये एवं पुनः डॉक्टर की गोली ले। यह एक तरह से शरीर को प्रताड़ित करना है। गांधी मानते थे कि यदि वह व्यक्ति दवा नहीं लेता, तो वह अजीर्ण की सजा भुगतता और फिर बाद में ज्यादा खाने से परहेज करता। लेकिन, यहाँ डॉक्टर ने दवा देकर एक तरह से उस व्यक्ति को बार-बार ज्यादा खाने के लिए प्रेरित किया। इससे उस व्यक्ति के शरीर को तो थोड़ी देर के लिए आराम हुआ, लेकिन उसका मन कमजोर बना।

गांधी ने डॉक्टरों में बढ़ती अर्थलोलुपता पर भी गहरी चिन्ता व्यक्त की है। उन्होंने लिखा है- “उस धन्धे में सच्चा परोपकार नहीं है। डॉक्टर सिर्फ आडम्बर दिखाकर

ही लोगों से बड़ी-बड़ी फीसें वसूलते हैं और अपनी एक पैसे की दवाई के कई रुपये लेते हैं। यों विश्वास के कारण और चंगे हो जाने की आशा में लोग उनसे ठगे जाते हैं।”²² आज गांधी की इन बातों की सच्चाई को हम सभी अपने जीवन में महसूस कर सकते हैं। हमारी आधुनिक चिकित्सापद्धति बाजारवाद की गिरफ्त में है और इसमें नैतिकता का ह्रास होता जा रहा है। कई बार जिन्दा जानवरों की नहीं, वरन गरीब मुल्क के लोगों पर भी दवाइयों का अनावश्यक परीक्षण किया जाता है और इसमें बड़े पैमाने पर हिंसा होती है, जो गांधी-दर्शन के प्रतिकूल है। साथ ही अक्सर रोगों का भय पैदा कर भी लोगों को लूटने का इन्तजाम किया जाता है और आज गांधी की वह बात भी सही हो रही है कि लोग बीमारी से अधिक, उसके भय से पीड़ित हैं।

गांधी मानते थे कि अस्पताल पाप की जड़ है। उसकी बदौलत लोग शरीर का जतन कम करते हैं और अनीति को बढ़ाते हैं। उन्होंने साफ-साफ लिखा है- “डॉक्टरों और अस्पतालों की वृद्धि कोई सच्ची सभ्यता की निशानी नहीं है।”²³ गांधी की यह बात भी ठीक जंचती है। क्योंकि बड़े-बड़े डॉक्टर एवं अस्पताल उस अन्तिम व्यक्ति का कोई ख्याल नहीं रखते हैं, जो गांधी-दर्शन के केन्द्र में है। इसलिए, आधुनिकता एवं विकास से कथिततौर पर लाभान्वित चन्द लोग चाहे आधुनिक

गांधी ने डॉक्टरों में बढ़ती अर्थलोलुपता पर भी गहरी चिन्ता व्यक्त की है। उन्होंने लिखा है- “उस धन्धे में सच्चा परोपकार नहीं है। डॉक्टर सिर्फ आडम्बर दिखाकर ही लोगों से बड़ी-बड़ी फीसें वसूलते हैं और अपनी एक पैसे की दवाई के कई रुपये लेते हैं। यों विश्वास के कारण और चंगे हो जाने की आशा में लोग उनसे ठगे जाते हैं।”

चिकित्सापद्धति का जितना भी गुणगान कर लें, यह आम जनता का हृदय हार नहीं बन सकती है। गरीब, पीड़ित एवं वंचित वर्ग को तो चाहे-अनचाहे प्रकृति एवं प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में ही जाना पड़ेगा। गांधी के शब्दों में कहें, तो इस देश में फार्मेशियों की संख्या बढ़ते देखने की मेरी कोई इच्छा नहीं है, बल्कि मैं तो चाहूँगा कि लोग दवाओं की दासता से मुक्त हो जाएँ।²⁴

गांधी प्राकृतिक उपचारक (चिकित्सक) को आधुनिक डॉक्टरों या वैद्यों से भिन्न गुणकर्म का धारक मानते थे। उनकी दृष्टि में प्राकृतिक चिकित्सासेवा का माध्यम है और इसमें आत्म विज्ञापन का कोई स्थान नहीं है। इसलिए सच्चा प्राकृतिक उपचारक सेवा भावना से काम करने वाले होते हैं और रोगी को कोई अनुचित प्रलोभन नहीं देते हैं। साथ ही वह अपने रोगी की किसी बीमारी को मिटाकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता है, वरन वह उसे ऐसी प्राकृतिक जीवनशैली को अपनाने के लिए प्रेरित करता है, जिससे रोगी अपने घर में रहकर स्वस्थ एवं गुणवत्तापूर्ण जीवन जी सके और आगे कभी बीमार न पड़े। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सामान्यतः आधुनिक डॉक्टरों या वैद्यों की इतनी ही दिलचस्पी रहती है कि वे अपने रोगियों के रोगों एवं उसके लक्षणों को समझ

आधुनिक चिकित्सा पद्धति आधुनिक सभ्यता का ही उपक्रम है, जिसने दुनिया में गरीबी, भुखमरी, विषमता एवं पर्यावरण असंतुलन जैसी महामारियों को बढ़ावा दिया है। ये महामारियाँ अपने आपमें अनगिनत बीमारियों की जननी एवं धात्री हैं।

लें और उसका इलाज ढूँढ़ निकालें। ऐसे डॉक्टर प्रायः एक व्यापारी की तरह व्यवहार करते हैं और उनका सारा ध्यान मुनाफे की ओर होता है। इसके विपरीत प्राकृतिक उपचारक मुनाफे की कामना से सर्वथा दूर होता है और वह रोगी को उसके रोग के लिए कोई जड़ी-बूटी भी नहीं बेचता है।

वर्तमान सन्दर्भ : आधुनिक चिकित्सापद्धति विकास के चरमोत्कर्ष पर है और दुनिया भर में उसकी उपलब्धियों को जोर-शोर से प्रचारित-प्रसारित किया जा रहा है। लेकिन, वास्तव में यह पद्धति दुनिया को स्वच्छ एवं स्वस्थ या निरोग बनाने में नाकामयाब रही है। उलटे इसके कारण दुनिया भर में स्वास्थ्य की स्थिति बिगड़ी है। ई-वेस्ट एवं इलेक्ट्रॉनिक कचरा आदि का जन्म हुआ है और कई नयी बीमारियों, यथा-एड्स, हिपेटाइटिस-डी आदि भी सामने आ गयी है। साथ ही इसके द्वारा कथित तौर पर उन्मूलित कर दी गयी बीमारियाँ, मसलन, मलेरिया एवं टी.बी. आदि भी ज्यादा घातक रूप में फैल रही हैं।

मालूम हो कि यह आधुनिक चिकित्सा पद्धति आधुनिक सभ्यता का ही उपक्रम है, जिसने दुनिया में

गरीबी, भुखमरी, विषमता एवं पर्यावरण असन्तुलन जैसी महामारियों को बढ़ावा दिया है। ये महामारियाँ अपने आपमें अनगिनत बीमारियों की जननी एवं धात्री हैं। इस तरह देखने पर हम पाते हैं कि वर्तमान समय में आधुनिक चिकित्सापद्धति सबों को 'स्वच्छता एवं स्वास्थ्य' उपलब्ध कराने में तो अक्षम है ही उलटे रोगवर्द्धक भी साबित हो रही है। अर्थात्, आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली बीमारियों को स्थायीतौर पर निरोधित करने में भी सफल नहीं हो पा रही है और 'बीमारियाँ हो ही नहीं' ऐसा तो यह सोचती भी नहीं है।

एक खास बात यह भी है कि आधुनिक सभ्यता के चमत्कारिक आविष्कारों (वेक्यूम क्लिनर, कठिनतम शल्यक्रिया, अंग प्रत्यारोपण आदि) का लाभ मुट्ठीभर अमीर लोगों तक सीमित है। बहुसंख्यक जनता इसमें जरूरी जीवनरक्षक दवाओं से भी महरूम है। साथ ही यह पद्धति अनैतिकता एवं बाजारवाद की गिरफ्त में है। इसके तथाकथित उच्च डिग्रीधारक डॉक्टर भी पैसों की लालच में मानव स्वास्थ्य से खिलवाड़ करते हैं और मानव अंगों की तस्करी जैसे घृणित कार्यों से भी परहेज नहीं करते हैं।

आधुनिक चिकित्सापद्धति ने लोगों को भी भ्रष्ट बनाया है और इस सम्बन्ध में गांधी की आशंका सच साबित हो रही है। लोग आज दवाइयों के दम पर अनियन्त्रित एवं अप्राकृतिक यौन सम्बन्धों में लिप्त हैं और भ्रूण-हत्या जैसे कुकृत्यों को भी अंजाम दे रहे हैं। इतना ही नहीं लम्बाई बढ़ाने, चेहरे को चमकाने एवं स्तन उन्नयन जैसे कृत्रिम उपचार भी बाजार के हित में अपना पाँव पसार रहे हैं। जिस दुनिया में आधे से अधिक लोगों को सन्तुलित भोजन भी उपलब्ध नहीं है, वहाँ चिकित्सा-विज्ञान की इन वाहि्यात देनों पर इतराना भदा एवं क्रूर मजाक ही है।

निष्कर्ष : कुल मिलाकर आधुनिक सभ्यता सामान्यतः स्वच्छता का अर्थ बाह्य चमक-दमक मानता है और स्वास्थ्य को रोगों या बीमारियों के अभाव की स्थिति। यह प्रायः किसी भी प्रकार की गन्दगी या बीमारी होने पर कथित तौर पर उसे मिटाने का प्रयास करती है। लेकिन, महात्मा गांधी की दृष्टि में स्वच्छता का अर्थ है- बाह्य एवं अन्तर दोनों जगत की पवित्रता और स्वास्थ्य केवल रोगों के अभाव का नाम नहीं, वरन यह शरीर, मन एवं आत्मा की सामंजस्यपूर्ण स्थिति का द्योतक है। गांधी के

विचार से यदि हम कुदरत के नियमों के अनुकूल सम्यक जीवनशैली अपनाएँ, तो यह हमें स्वच्छता एवं स्वास्थ्य सहज ही उपलब्ध हो सकती है। इसके लिए हमें अलग से 'स्वच्छता-अभियान' या 'स्वास्थ्य मिशन' चलाने की आवश्यकता नहीं है।

जाहिर है कि आधुनिक सभ्यता से मनुष्य को अधिकाधिक सुख-मौज लूटने एवं सदाचार के नियमों को तोड़ने और उसके बाद होने वाली गन्दगी एवं बीमारियों से कृत्रिम उपकरणों एवं दवाइयों के जरिये बचने का आश्वासन या प्रलोभन मिलता है। जबकि, गांधी-दर्शन में इन्द्रियनिग्रह, सदाचार एवं कुदरती नियमों का पालन की हिदायत मौजूद है। इसलिए, आज जबकि आधुनिक सभ्यता विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर भी लोगों को वास्तविक सुख-चैन नहीं दे पा रही है, तो वैकल्पिक सभ्यता एवं व्यवस्था की तलाश कर रहे लोगों को गांधी-चिन्तन में आशा की किरण दिखनी स्वाभाविक है। साथ ही यह एकांगी आधुनिकता से त्रस्त लोगों के लिए भी नवजीवन का वरदान साबित हो सकता है।

अतः, न केवल सभ्यता प्रणाली की विफलताओं के मद्देनजर, वरन सच्चे मनुष्यत्व (स्वच्छ एवं स्वास्थ्य) की प्राप्ति की दृष्टि से भी 'सादा जीवन, उच्च विचार' का भारतीय (गांधीय) सूत्र अनुपालनीय है। तो आइए प्रकृति की ओर लौटने का साहस करें और गांधी को अपनाने का श्रम...!!

सन्दर्भ - संकेत

1. गांधी; आरोग्य की कुंजी, अनुवादिका; सुशीला नय्यर, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद (गुजरात), प्रथम संस्करण, 1948, पृ. 2.
2. वही, पृ. 1.
3. अरुण, डॉ. ए.के.; 'महात्मा गांधी का स्वास्थ्य-चिन्तन' (आलेख), मीडिया, प्रधान सम्पादक-शम्भुनाथ, सम्पादन-श्रीशचन्द्र जैसवाल, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, नयी दिल्ली, अंक-4, अक्टूबर-दिसम्बर 2007-जनवरी-मार्च 2008, (संयुक्तांक), पृ. 104.
4. गांधी; आरोग्य की कुंजी, पूर्वोक्त, पृ. 47.
5. देसाई, मोरारजी; 'प्राक्कथन', कुदरती उपचार, मूल लेखक-गांधी, सम्पादक-भारतन् कुमारप्पा,

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद (गुजरात), पृ. 3.

6. अरुण, डॉ. ए.के.; 'मन चंगा, तो शरीर गंगा' (आलेख), गांधी-मार्ग, सम्पादक-अनुपम मिश्र, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, जनवरी-फरवरी 2009, पृ. 34.
7. गांधी; सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, खंड-48, पृ. 458.
8. गांधी; हिन्दी नवजीवन, 6 अक्टूबर 1927.
9. अरुण, डॉ. ए.के.; 'मन चंगा तो शरीर गंगा' (आलेख), गांधी-मार्ग, पूर्वोक्त, पृ. 35 (उद्धृत).
10. गांधी; आरोग्य की कुंजी, पूर्वोक्त, पृ. 15.
11. धर्माधिकारी, चन्द्रशेखर; गांधी-विचार और पर्यावरण, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण-2009, पृ. 26-27.
12. मशरूवाला, किशोरलाल; गांधी विचार-दोहन, सस्ता साहित्य-मंडल, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1995, पृ. 150.
13. गांधी; आरोग्य की कुंजी, पूर्वोक्त, पृ. 28.
14. वही, पृ. 40.
15. गांधी; हरिजन सेवक, 2 जून, 1946.
16. गांधी; आरोग्य की कुंजी, पूर्वोक्त, पृ. 34.
17. वही, पृ. 37.
18. वही, पृ. 41.
19. वही, पृ. 49.
20. वही, पृ. 48.
21. वही, पृ. 50.
22. गांधी; हिन्द स्वराज्य, अनुवादक: अमृतलाल ठाकोरदास नानावटी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी (उत्तर प्रदेश), 2006, पृ. 43.
23. गांधी; (हिन्दी नवजीवन, 6 अक्टूबर 1927).
24. गांधी; यंग इंडिया, 12 जनवरी 1928

संपर्क:

दर्शनशास्त्र विभाग,
टीएमबीयू,
भागलपुर, बिहार

गांधी का प्रौद्योगिक-दर्शन

डॉ. हिमांशु शेखर सिंह

आधुनिक यूरोप की ऐन्द्रिक संस्कृति और यान्त्रिक-औद्योगिक सभ्यता के विकृत स्वरूप और इसके भयावह परिणामों को गांधी ने उस समय स्पष्ट रूप से देखा, जिस समय यह किशोरावस्था में ही थी और इसका केवल आकर्षक रूप ही प्रकट था। गांधी की दृष्टि में जो सभ्यता आधुनिक मशीनों के साथ पूरी दुनिया में आताल-पाताल तक फैल रही है, वह महापाप है और उसका सर्वथा त्याग ही किया जाना चाहिए।

औद्योगिक क्रान्ति के बाद कुछ यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने दुनिया भर में यह झूठ प्रचारित कर दिया कि सामाजिक प्रगति का एकमात्र पैमाना भौतिक समृद्धि एवं तकनीकी विकास है। दुर्भाग्य से भारतीय बुद्धिजीवियों और विशेषकर यहाँ के एलिट क्लास ने भी इस पैमाने को अंगीकार कर लिया। फिर तो इसमें कोई सन्देह और विवाद की बात ही नहीं रही कि भारत अविकसित है और यूरोप विकसित।¹

लेकिन, महात्मा गांधी ने इस मापदंड को खारिज कर दिया और इसके भयावह परिणामों के प्रति लोगों को चेतावनी दी। उन्होंने अपनी दूरदृष्टि से यह भांप लिया कि औद्योगिक सभ्यता और उसकी प्रौद्योगिकी का तथाकथित आकर्षक रूप महज छलावा है। इस बावत सुप्रसिद्ध दार्शनिक यशदेव शल्य ने लिखा है- “आधुनिक यूरोप की ऐन्द्रिक संस्कृति और यान्त्रिक-औद्योगिक सभ्यता के विकृत स्वरूप और इसके भयावह परिणामों को गांधी ने उस समय स्पष्ट रूप से देखा, जिस समय यह किशोरावस्था में ही थी और इसका केवल आकर्षक रूप ही प्रकट था।”² गांधी की दृष्टि में जो सभ्यता आधुनिक मशीनों के साथ पूरी दुनिया में आताल-पाताल तक फैल रही है, वह महापाप है और उसका सर्वथा त्याग ही किया जाना चाहिए।”³

इस तरह गांधी ने आधुनिक सभ्यता एवं आधुनिक प्रौद्योगिकी का सहज, सरल एवं सर्वग्राही विकल्प भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपनी दूरदृष्टि से यह देख लिया था कि आधुनिक प्रौद्योगिकी दूसरों का नाश करने वाली और खुद भी नाशवान है। इसलिए, वे न केवल हिन्दुस्तान, वरन पूरी दुनिया को अंधाधुंध यंत्रिकरण के खतरों के प्रति अगाह कर रहे थे। वे चाहते थे कि यन्त्र मनुष्य के नियन्त्रण में रहे, न कि मनुष्य यन्त्र का गुलाम बन जाए। गांधी ने लिखा है- “मैं मानता हूँ कि हिन्दुस्तान को, और उसके माध्यम से सारे विश्व को स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है, तो आज नहीं, तो कल उसे गाँव में जाना ही पड़ेगा, झोंपड़ी में रहना ही पड़ेगा, महलों में नहीं। अरबों लोग शहरों में और महलों में सुख और शान्ति से नहीं रह सकते, न वे एक दूसरे की हत्या करके, अर्थात् हिंसा और असत्य का आश्रय लेकर रह सकते हैं। बिना सत्य और

अहिंसा के मनुष्य जाति का नाश ही होने वाला है, उसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। सत्य और अहिंसा के दर्शन केवल गाँवों में और सादगी में ही हो सकते हैं। सादगी भी चरखे में और चरखे के साथ जुड़ी हुई बातों में ही हो सकती है। दुनिया उलटी दिशा में जा रही है, उसका मुझे जरा भी भय नहीं है। पतंग जब नाश की ओर जा रहा होता है, तब अधिक चक्कर काटता है और चक्कर काटते-काटते ही जल जाता है। हो सकता है कि हिन्दुस्तान उस चक्कर से बच न पाए। तो भी मेरे जीवन की अन्तिम साँस तक हिन्दुस्तान को और दुनिया को बचाने के प्रयास करना मेरा कर्तव्य है। मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को जीवन-निर्वाह के लिए जिन-जिन चीजों की आवश्यकता है, वे उसके नियन्त्रण में होनी चाहिए। ऐसा नहीं होगा, तो व्यक्ति का बचना मुश्किल है।¹⁴ गांधी ने साफ-साफ कहा था “मशीनें यूरोप को उजाड़ने में लगी हैं और वहाँ की हवा अब हिन्दुस्तान में भी चल रही है। यन्त्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है और वह महापाप है। ...मशीन की यह हवा अगर ज्यादा चली, तो हिन्दुस्तान की बुरी दशा होगी।”¹⁵

गांधी यह चाहते थे कि मनुष्य यन्त्रों का उपयोग कम-से-कम करे। क्योंकि, यन्त्रों का कोई गुण नहीं है। वरन, वह तो ‘जहर की दवा, जहर’ की मिसाल है, जो मरते-मरते कह जाता है ‘मुझसे बचिए, होशियार रहिए, मुझसे आपको कोई फायदा नहीं होने का।’ जाहिर है कि यन्त्र अवगुणों की खान है और इसने मनुष्य एवं उनकी मनुष्यता को नुकसान पहुँचाया है। गांधी के शब्दों में “यन्त्र तो साँप का एक ऐसा बिल है, जिसमें एक नहीं, बल्कि सैकड़ों साँप होते हैं। एक के पीछे दूसरा लगा ही रहता है।”¹⁶ इसलिए, हमें धीरे-धीरे यन्त्रों पर से अपनी निर्भरता को कम करने का प्रयास करना चाहिए।

गांधी यह मानते थे कि प्रौद्योगिकी को अपना अराध्य मानने वाली आधुनिक सभ्यता अनीति का पोषक है। यह भौतिक समृद्धि एवं शारीरिक सुखोपभोग बड़े-बड़े महल, द्रुत वाहन एवं फैशनेबल कपड़े आदि इस तथाकथित आधुनिक सभ्यता की निशानी है। इसमें लोग बाहरी (दुनिया) की खोजों एवं शारीरिक (ऐन्द्रिक) सुखों में ही धन्यता-सार्थकता महसूस करते

हैं और अत्यधिक भौतिक विकास को ही जीवन का चरम पुरुषार्थ मानते हैं। वास्तव में यह एक ‘शैतानी सभ्यता’ है, जो ‘जिसकी लाठी, उसकी भैंस’, ‘योग्यतम की रक्षा’ या ‘दूसरों को मारकर जीओ’ के सिद्धान्त पर आधारित है। इस सभ्यता ने भौतिकवाद की पूजा की, जिसका दुष्परिणाम हुआ कि शक्तिशाली ने शक्तिहीनों का शोषण किया और आज भी कर रहे हैं।⁷ इसकी वजह से लोगों के नैतिक विकास की गति अवरुद्ध हो गयी और प्रगति का मपदंड रुपया ही हो गया। इस कथित सभ्यता के निर्माण हेतु स्त्री-पुरुषों और बच्चों की लाशों पर बड़े-बड़े कल-कारखाने खड़े किये गये हैं।⁸

इस तरह आधुनिक सभ्यता का यन्त्रवाद दुनियाभर में भोगवाद एवं अनीति को बढ़ावा दे रहा है, जो गांधी-दृष्टि से सर्वथा अनुचित एवं अवाञ्छनीय है। गांधी ने साफ-साफ कहा है कि आधुनिक सभ्यता में नीति या धर्म की बात नहीं है।⁹ यह सभ्यता तो अधर्म है और जहाँ-जहाँ फैल रही है, वहाँ के लोग आधे पागल जैसे देखने में आते हैं।¹⁰ इस सभ्यता की खूबी यह है कि लोग इसे अच्छा मानकर इसमें कूद पड़ते हैं और फिर वे न तो घर के होते हैं, न घाट के। वे सच बात को भी भूल जाते हैं। यह सभ्यता स्वार्थ से भरी, दम्भपूर्ण और ईश्वर को भी भूलने वाली है। इसमें अपने (यूरोप के) अलावा अन्य लोगों को तुच्छ एवं असभ्य माना जाता है।¹¹ यह दूसरों का

पतंग जब नाश की ओर जा रहा होता है, तब अधिक चक्कर काटता है और चक्कर काटते-काटते ही जल जाता है। हो सकता है कि हिन्दुस्तान उस चक्कर से बच न पाए। तो भी जीवन की अन्तिम साँस तक हिन्दुस्तान को और दुनिया को बचाने का प्रयास करना मेरा कर्तव्य है। मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को जीवन-निर्वाह के लिए जिन-जिन चीजों की आवश्यकता है, वे उसके नियन्त्रण में होनी चाहिए। ऐसा नहीं होगा, तो व्यक्ति का बचना मुश्किल है।

नाश करने वाली और खुद भी नाशवान है। इसकी चपेट में आये लोग खुद की जलायी हुई आग में जल मरेंगे।¹²

आधुनिक सभ्यता के विपरीत भारतीय सभ्यता धर्म (नीति) पर आधारित है और इसमें यन्त्रवाद के विषैले जहर का प्रवेश नहीं हुआ है। इस बाबत गांधी ने लिखा है “हमने देखा कि मनुष्य की वृत्तियाँ चंचल हैं। उसका मन बेकार की दौड़-धूप किया करता है। उसका शरीर जैसे-जैसे ज्यादा दिया जाए, वैसे-वैसे ज्यादा माँगता है। ज्यादा लेकर भी वह सुखी नहीं होता। भोग भोगने से भोग की इच्छा बढ़ती जाती है। इसलिए, हमारे पुरखों ने भोग की हद बाँध दी। ...ऐसा नहीं था कि हमें यन्त्र वगैरा की खोज करना ही नहीं आता था। वरन, हमारे पूर्वजों ने देखा कि लोग अगर यन्त्र वगैरा की झंझट में पड़ेंगे, तो गुलाम ही बनेंगे और अपनी

मैं मानता हूँ कि जो सभ्यता हिन्दुस्तान ने दिखाई है, उस सभ्यता को पाने में दुनिया में कोई नहीं पहुँच सकता।... हिन्दुस्तान अचल है, अडिग है। यही उसका भूषण है। हिन्दुस्तान पर आरोप लगाया जाता है कि यहाँ के लोग इतने असभ्य, अज्ञानी और आलसी हैं कि उनके जीवन में कोई फेरफार कराया ही नहीं जा सकता। पर यह आरोप हमारा गुण है, दोष नहीं।

हिन्दुस्तान अचल है, अडिग है। यही उसका भूषण है। हिन्दुस्तान पर आरोप लगाया जाता है कि यहाँ के लोग इतने असभ्य, अज्ञानी और आलसी हैं कि उनके जीवन में कोई फेरफार कराया ही नहीं जा सकता। पर यह आरोप हमारा गुण है, दोष नहीं। अनुभव से जो हमें

ठीक लगा है, उसे हम क्यों बदलेंगे? बहुत से अकल देनेवाले आते-जाते रहते हैं, पर हिन्दुस्तान अडिग रहता है। यही उसकी खूबी है, यही उसका लंगर है।”¹⁴ शायद इसी अर्थ में एक बार गांधी ने लार्ड लोथियन से कहा था “विनाश का रास्ता ही भारत की प्रगति का रास्ता हो सकता है।”¹⁵

गांधी के प्रौद्योगिकी-दर्शन की कई विचारकों ने आलोचना की है।¹⁶ डिलाइल बर्न्स ने लिखा है “यह तो बुनियादी विचार-दोष है। उसमें छिपे रूप से यह बात सूचित की गयी है कि जिस किसी चीज का बुरा उपयोग हो सकता है, उसे हमें नैतिक दृष्टि से हीन मानना चाहिए। लेकिन, चरखा भी तो एक यन्त्र ही है। नाक पर लगाया हुआ चश्मा भी आँख को मदद करने को लगाया हुआ यन्त्र ही है। हल भी यन्त्र है। पानी खींचने के पुराने-से-पुराने यन्त्र भी शायद मानव-जीवन को सुधारने की मनुष्यों की हजारों बरस की लगातार कोशिश के आखिरी फल होंगे। किसी भी यन्त्र का बुरा उपयोग होने की सम्भावना रहती है। लेकिन, अगर ऐसा हो, तो उसमें रही हुई नैतिकहीनता यन्त्र की नहीं, बल्कि उसका उपयोग करने वाले मनुष्य की है।”¹⁷

कई अन्य लोगों ने यह भी सवाल उठाया कि क्या गांधी सभी तरह के यन्त्रों के विरोधी हैं? ऐसा ही एक सवाल रामचन्द्रन का था, जिसके उत्तर में गांधी ने कहा था “...मेरा विरोध यन्त्रों के लिए नहीं है, बल्कि यन्त्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा है, उसके लिए है। आज तो जिन्हें मेहनत बचाने वाले यन्त्र कहते हैं, उनके पीछे लोग पागल हो गये हैं। उनसे मेहनत जरूर बचती है, लेकिन लाखों लोग बेकार होकर भूखों मरते हुए रास्तों पर भटकते हैं। समय और श्रम की बचत तो मैं भी चाहता हूँ, लेकिन यह किसी खास वर्ग की नहीं, बल्कि सारी मानव-जाति की होनी चाहिए। कुछ गिने-गिनाये लोगों के पास सम्पत्ति जमा हो ऐसा नहीं, बल्कि सबके पास जमा हो ऐसा मैं चाहता हूँ। आज तो करोड़ों की गरदन पर कुछ लोगों के सवार हो जाने में यन्त्र मददगार हो रहे हैं। यन्त्रों के उपयोग के पीछे जो प्रेरक कारण है, वह श्रम की बचत नहीं, बल्कि धन का लोभ है। आज की इस चालू अर्थ-व्यवस्था के खिलाफ मैं अपनी तमाम ताकत लगाकर युद्ध चला

रहा हूँ।¹⁸ आगे उन्होंने जोड़ा “हम जो कुछ करें उसमें मुख्य विचार इन्सान के भले का होना चाहिए। ऐसे यन्त्र नहीं होने चाहिए, जो काम न रहने के कारण आदमी के अंगों को जड़ और बेकार बना दें।”¹⁹

निष्कर्षतः महात्मा गांधी ने अपनी दूरदृष्टि से यह भाँप लिया कि औद्योगिक सभ्यता और उसकी प्रौद्योगिकी का तथाकथित आकर्ष रूप महज छलावा है।²⁰ आधुनिक यूरोप की ऐन्द्रिक संस्कृतिक और यान्त्रिक-औद्योगिक सभ्यता के विकृत स्वरूप और इसके भयावह परिणामों को गांधी ने उस समय स्पष्ट रूप से देखा, जिस समय यह किशोरवस्था में ही थी और इसका केवल आकर्षक रूप ही प्रकट था।

गांधी मार्क्स से आगे बढ़कर पश्चिम की औद्योगिक सभ्यता और उसकी आधुनिक प्रौद्योगिकी दोनों को खारिज कर दे ते हैं। गांधी ने आधुनिक सभ्यता एवं आधुनिक प्रौद्योगिकी, दोनों को मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणियों सहित सम्पूर्ण चराचर जगत के लिए विनाशकारी बताया है। साथ ही उन्होंने आधुनिक सभ्यता एवं आधुनिक प्रौद्योगिकी का सहज, सरल एवं सर्वग्राही विकल्प भी प्रस्तुत किया है। यह विकल्प आधुनिक सभ्यता एवं आधुनिक प्रौद्योगिकी की ‘समृद्धि’ एवं ‘श्रेष्ठता’ के मोहपाश से इतर ‘सादगी’ एवं ‘सर्वोदय’ का विकल्प है।

सन्दर्भ - संकेत

1. शल्य, यशदेव, ‘तकनीकी और सामाजिक प्रगति’ (आलेख), साहित्य चिन्तन और युग चिन्तन, राका प्रकाशन, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण-1998, पृ. 245 एवं समसामयिक चिन्ताएँ, राका प्रकाशन, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 33.
खहमने यूरोप की धारणा के अनुसार ही विज्ञान और तकनीकी को विकास का पैमाना मान लिया। इस पैमाने को प्रमाणित मान लेने पर इसमें कोई सन्देह और विवाद की बात ही नहीं रह जाती कि हम अविकसित हैं और यूरोप विकसित है।
2. शल्य, यशदेव; ‘महात्मा गांधी और हिन्द स्वराज’ (आलेख), साहित्य चिन्तन और युग चिन्तन, पूर्वोक्त, पृ. 235 एवं समसामयिक चिन्ताएँ,

पूर्वोक्त, पृ. 5.

3. शर्मा, अम्बिकादत्त; ‘हिन्द स्वराज्य और कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो का पुनर्पाठ’ (आलेख), उन्मीलन, सम्पादक: यशदेव शल्य एवं मुकुन्द लाठ, दर्शन प्रतिष्ठान, जयपुर (राजस्थान), वर्ष-23, अंक-2, जुलाई-2009, पृ. 79.
4. गांधी; सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, प्रकाशन विभाग, नयी दिल्ली, खंड 81, पृ. 331-333.
5. गांधी; हिन्द स्वराज्य, अनुवादक- अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी (उत्तर प्रदेश), आठवाँ संस्करण, 2009, पृ. 94.
6. वही, पृ. 96.
7. धर्मपाल; गांधी को समझें, अनुवादक-इन्दुमति काटदरे, पुनरुत्थान इस्ट, अहमदाबाद (गुजरात), प्रथम संस्करण, 2007, पृ. 211.
8. वही.
9. गांधी, म.क.; हिन्द स्वराज्य, पूर्वोक्त, पृ. 36.
10. वही.
11. गांधी, म.क.; नवजीवन, 29 दिसम्बर, 1920
12. गांधी; हिन्द स्वराज्य, पूर्वोक्त, पृ. 40.
13. वही, पृ. 62-63.
14. गांधी; हिन्द स्वराज्य, पूर्वोक्त, पृ. 61-62.
15. धर्मपाल; गांधी को समझें, पूर्वोक्त, पृ. 40.
16. शेखर, सुधांशु; ‘गांधी का प्रौद्योगिकी दर्शन : एक विमर्श’, दार्शनिक त्रैमासिक, मार्च 2013
17. गांधी; हिन्द स्वराज्य, पूर्वोक्त, पृ. 15. (उद्धृत)
18. वही, पृ. 15-16.
19. वही, पृ. 16.
20. शेखर, सुधांशु; ‘गांधी का प्रौद्योगिकी दर्शन : एक विमर्श’, दार्शनिक त्रैमासिक, पूर्वोक्त

संपर्क:

दर्शनशास्त्र विभाग,
टीएमबीयू,
भागलपुर, बिहार

गांधी का ग्राम-स्वराज

डेजी कुमारी

जिन्दगी मीनार जैसी नहीं होगी, जहाँ ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। यहाँ तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्दु होगा।

महात्मा गांधी के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु है- 'गाँव'। उन्होंने बार-बार यह दुहराया है कि भारत अपने चंद शहरों में नहीं बल्कि सात लाख गाँवों में बसा हुआ है। इसलिए यदि गाँव का नाश होगा तो भारत का भी नाश हो जाएगा। अपनी सुप्रसिद्ध रचना 'हिन्द स्वराज्य' में भी गांधी ने वस्तुतः ग्राम-स्वराज्य की ही रूपरेखा प्रस्तुत की है। दरअसल गांधी के सपनों का स्वराज्य ग्राम-स्वराज्य ही है जिसे वे एक पूर्ण प्रजातन्त्र का आदर्श बताते हैं। इसमें सभी ग्राम स्वावलम्बी और परस्पर परावलम्बी होंगे। हर एक गाँव अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा करेगा। खेल-कूद के लिए मैदान आदि का बन्दोबस्त होगा। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोएगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके; यों वह गाँजा, तम्बाकू, अफीम वगैरा की खेती से बचेगा। प्रत्येक गाँव अपने पड़ोसी गाँव के साथ भाईचारा एवं परस्पर सहयोग की भावना से काम करेगा।

गांधी के सपनों की ग्राम-इकाई मजबूत-से-मजबूत होगी। एक हजार आदमी का एक गाँव होगा। ऐसे गाँव को अगर स्वावलम्बन के आधार पर अच्छी तरह संगठित किया जाए, तो वह बहुत कुछ कर सकता है। ऐसा समाज अनगिनत गाँवों का बना होगा। इसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। जिन्दगी मीनार जैसी नहीं होगी, जहाँ ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। यहाँ तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्दु होगा। यह व्यक्ति हमेशा अपने गाँव के खातिर मरने-मिटने को तैयार रहेगा। प्रत्येक गाँव अपने पड़ोसी गाँवों के साथ प्रेम से रहेगा। इस तरह सारा समाज ऐसे लोगों का बन जाएगा, जो कभी किसी पर हमला नहीं करेंगे, बल्कि हमेशा नम्र रहेंगे और अपने में समुदाय की उस शान को महसूस करेंगे जिसके वे एक जरूरी अंग हैं। इसलिए सबसे बाहर का घेरा या दायरा अपनी ताकत का उपयोग भीतर वालों को कुचलने में नहीं करेगा, बल्कि उन सबको ताकत देगा और उनसे ताकत पाएगा।

गांधी के ग्राम-स्वराज्य में आजादी नीचे से शुरू होगी। हर एक गाँव में पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत हो। ग्राम-सभा को

गाँव के हित में योजनाएँ बनाने और उसके क्रियान्वयन का पूरा अधिकार होगा। गाँव का शासन चलाने के लिए हर साल गाँव के पाँच आदमियों की एक पंचायत-समिति चुनी जाएगी। इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यता वाले गाँव के बालिग स्त्री-पुरुषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें। इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे। उसमें बहुमत की तानाशाही के लिए कोई गुंजाइश नहीं होगी। सारे निर्णय सर्वसम्मति या सर्वानुमति से लिए जाएँगे। इस ग्राम-स्वराज्य में आज के प्रचलित अर्थों में सजा या दंड का भी कोई रिवाज नहीं रहेगा। सारे विवादों का शान्तिपूर्ण तरीके से बातचीत के द्वारा समाधान किया जाएगा। यह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल में स्वयं ही धारासभा, न्यायसभा और कार्यकारिणीसभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी।

गांधी कहते हैं कि हर एक गाँव में गाँव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला, पूजास्थल और सभा-भवन हो। मवेशियों के लिए पर्याप्त चारागाह हो। सहकारी डेयरी और सामूहिक हाट हो। पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम हो- वाटर वर्क्स हों- जिससे गाँव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिले। कुओं एवं तालाबों पर गाँव का पूरा नियन्त्रण रहे और वे सबों के लिए समान रूप से खुले हों। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सब के लिए लाजमी हो। सबों को पर्याप्त भोजन और आवश्यक दवाइयाँ सहज ही उपलब्ध हों। जहाँ तक हो, गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर किए जाए। जात-पाँत और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद आज हमारे समाज में पाए जाते हैं, वैसे इस ग्राम-स्वराज्य में बिल्कुल नहीं रहे।

गांधी कहते हैं कि देहात वालों में ऐसी कला और कारीगरी का विकास होना चाहिए, जिससे बाहर उनकी पैदा की हुई चीजों की कीमत हो। जब गाँवों का पूरा-पूरा विकास हो जाएगा, तो देहातियों की बुद्धि और आत्मा को सन्तुष्ट करने वाली कला-कारिगरों के धनी स्त्री-पुरुषों की गाँवों में कमी नहीं रहेगी। गाँव में कवि होंगे, चित्रकार होंगे, शिल्पी होंगे, भाषा के पण्डित और शोध करने वाले लोग भी होंगे। थोड़े में, जिन्दगी की सभी आवश्यक चीजें गाँव में मिलेंगी। वहाँ पर्याप्त अनाज, साग-सब्जियाँ, दूध, फल एवं खादी वस्त्र भी

उपलब्ध होगा। आगे वे कहते हैं कि आज हमारे देहात उजड़े हुए और कूड़े-कचरे के ढेर बने हुए हैं। कल वहीं सुन्दर बगीचे होंगे और ग्रामवासियों को ठगना या उनका शोषण करना असम्भव हो जाएगा।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महात्मा गांधी के चिन्तन में समग्र जीवन एवं सम्पूर्ण विश्व की चिन्ता है। उन्होंने न केवल मनुष्य बल्कि समस्त जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, प्रकृति-पर्यावरण आदि के बीच मानव जीवन की नमरसता या सामंजस्य स्थापित करने वाली जीवन-दृष्टि विकसित की थी। अपनी कालजयी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में उन्होंने ग्राम-स्वराज की रूपरेखा प्रस्तुत की है।

गांधी का सम्पूर्ण जीवन और दर्शन ग्राम्य-जीवन का पोषक है। आवश्यकताओं में कटौती, लोभ-लालच का त्याग, अपरिग्रह, ट्रस्टीशिप, कुटीर उद्योग, स्वावलम्बन, सर्वोदय आदि के बारे में उनके विचार तथा प्रकृति के प्रति उनका असीम लगाव- ये सभी उनकी ग्राम-चेतना की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। जिस उपभोक्तावादी संस्कृति की ऊपर चर्चा की गयी है, उसके वे हमेशा विरोधी थे। उन्होंने बराबर आवश्यकताओं को कम करने की बात कही। उन्होंने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति को श्रमपूर्वक अपनी आजीविका अर्जित करनी चाहिए और उसी से सन्तोषपूर्वक जीवन यापन करना चाहिए।

कुओं एवं तालाबों पर गाँव का पूरा नियन्त्रण रहे और वे सबों के लिए समान रूप से खुले हों। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सब के लिए लाजमी हो। सबों को पर्याप्त भोजन और आवश्यक दवाइयाँ सहज ही उपलब्ध हों। जहाँ तक हो, गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर किए जाए। जात-पाँत और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद आज हमारे समाज में पाए जाते हैं, वैसे इस ग्राम-स्वराज्य में बिल्कुल नहीं रहे।

संपर्क:

गांधी विचार विभाग,
टीएमबीयू,
भागलपुर, बिहार

विकास की गांधी अवधारणा : एक विमर्श

नीशु कुमारी

समग्र विकास की गांधी परिकल्पना को 'सर्वोदय' कहते हैं। हमें मालूम है कि सर्वोदय का अर्थ है, 'सबों का उदय', 'सब प्रकार से उदय' और 'सबों के द्वारा उदय'। यहाँ 'सबों के उदय' का अर्थ है सभी मनुष्यों, जीव-जन्तुओं एवं चराचर जगत का विकास। 'सब प्रकार से उदय' का अर्थ है शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक सभी दृष्टियों से विकास और 'सबों के द्वारा उदय' का अर्थ है। उदय या विकास में सबों की भागीदारी।

गांधी के सर्वोदय या समग्र विकास की यह परिकल्पना भारतीय सभ्यता-संस्कृति से गहरे रूपों में जुड़ी है और इसके साथ हमारे प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'सर्वेभवंतु सुखिनः' का सिद्धान्त जुड़ा हुआ है। यह विकास का एक स्पष्ट 'मॉडल' है, जिसमें निम्न बातें शामिल हैं-

भारतीय संस्कृति में 'सबे भूमि गोपाल की' या 'सम्पत्ति सब रघुपति के ऐही' का आदर्श रहा है। गांधी के समग्र विकास के सिद्धान्त में इसकी केन्द्रीय भूमिका है। उन्होंने अपने सर्वोदय सिद्धान्त में रस्किन की पुस्तक 'अंटू द लास्ट' के उस सूत्र को प्रमुखता दिया है, जिसमें यह कहा गया है- 'व्यष्टि का शुभ समष्टि के शुभ में निहित है'¹। इसका अर्थ है कि समाज के हित में ही व्यक्ति का हित निहित है। इस भावना का आधार गांधी के ईश्वर एवं आत्मा सम्बन्धी विचारों में मिलता है। उनका कहना है कि जिस प्रकार एक ही सूर्य की किरणें सम्पूर्ण संसार को आलोकित करती हैं, उसी प्रकार एक ही ईश्वर का अंश सभी मनुष्यों, जीव-जन्तुओं एवं चराचर जगत में मौजूद है। इस तरह सभी एक हैं और किसी का किसी से कोई विरोध नहीं है। अर्थात् सबों के विकास में ही हमारा विकास निहित है। दूसरे शब्दों में, हम यह भी कह सकते हैं कि दूसरों के 'उदय' या 'विकास' में ही हमारा 'उदय' या 'विकास' निहित है।

गांधी का मानना था कि मानसिक श्रम की तुलना में शारीरिक श्रम को हेय दृष्टि से देखने के कारण भी समाज में भेदभाव एवं असमानता को बढ़ावा मिला है। इसलिए, उन्होंने शारीरिक श्रम को प्रतिष्ठित करते हुए, इसे अपने एकादश

व्रत में शामिल किया। साथ ही उन्होंने 'अंटू दिस लास्ट' के दूसरे एवं तीसरे सूत्र को भी सर्वोदय में प्रमुखता दी। दूसरे सूत्र के अनुसार 'एक वकील और एक नाई दोनों के कार्यों का समान मूल्य है। क्योंकि, दोनों को अपने श्रम से आजीविका चलाने का समान अधिकार है।' तीसरे सूत्र के अनुसार- 'एक कृषक, श्रमिक या शिल्पकार का जीवन ही श्रेयष्कर है, जिसमें वह अपने श्रम से अपनी आजीविका चलाता है'।

अपनी सुप्रसिद्ध रचना 'हिन्द स्वराज' में गांधी ने मशीनों की हद बाँधने की बात कही है। उनका मानना है कि यन्त्रों के कारण प्रकृति-पर्यावरण का अनुचित दोहन होता है और मानवीय श्रम की अवहेलना होती है। यन्त्रों के प्रति पागलपन की वजह से न केवल मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण बढ़ा, वरन् राष्ट्र के द्वारा राष्ट्र के शोषण की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों को भी बढ़ावा मिला।

विकास के पश्चिमी मॉडल में विषमता की खाई दिन प्रतिदिन गहरी एवं चौड़ी होती चली जा रही है। विडम्बना यह है कि जहाँ एक ओर हमारे देश के कुछ उद्योगपतियों का नाम दुनिया के सर्वाधिक अमीर लोगों में शुमार हो रहा है, वहीं हमारी 78 प्रतिशत आबादी की औसत दैनिक आय महज 18 रुपये है। हम चाँद पर बस्तियाँ बसाने का सपना देख रहे हैं और आधे से अधिक लोगों को छोटा-सा अपना मकान भी नसीब नहीं है। आई.टी. के क्षेत्र में देश के विकास के दावों के बीच आज भी लगभग आधी आबादी निरक्षर है। आमलोग तो बस यही कह रहे हैं- 'महँगाई देवी (डायन नहीं) खाए जात है'। जाहिर है कि विकास के पश्चिमी मॉडल ने विषमता का दारुण संत्रास दिया है। यह बढ़ते नक्सलवाद, आतंकवाद और वैमनस्य का एक प्रमुख कारण है। इस तरह हम देखते हैं कि वर्तमान विकास की धारा विनाशकारी है। अतः हमें वर्तमान धारा के विपरीत गांधी-विचार की ओर चलने की जरूरत है।

संपर्क:

शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग,
टीएमबीयू, भागलपुर

सभ्यता-दर्शन : एक विमर्श

सौरभ कुमार चौहान

महात्मा गांधी का कहना है कि आधुनिक (पश्चिमी) सभ्यता 'बिगाड़ करने वाली' और 'अधर्म' का पर्याय है। यह हमें भौतिकवादी दृष्टिकोण देती है और हमारे विचारों को शरीर एवं ऐन्द्रिक सुख की वृद्धि के साधनों पर केन्द्रित करती है। इसमें लोग बाहरी (दुनिया) की खोजों एवं शारीरिक सुखों में धन्यता-सार्थकता और पुरुषार्थ मानते हैं। वास्तव में यह एक 'शैतानी सभ्यता' है, जो 'जिसकी लाठी उसकी भैंस', 'योग्यतम की रक्षा' या 'दूसरों को मारकर जीओ' के सिद्धान्त पर आधारित है। यह भौतिकवाद की पूजक है, जिसके दुष्परिणाम स्वरूप शक्तिशाली शक्तिहीनों का शोषण करते हैं। इसकी वजह से लोगों के नैतिक विकास की गति अवरुद्ध हो गयी है और प्रगति का मापदण्ड रुपया ही हो गया है। इस कथित सभ्यता के निर्माण के लिए स्त्री-पुरुषों और बालकों की लाशों पर बड़े-बड़े कल-कारखाने खड़े किये गये हैं। यह हमें सिखाती है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाकर ही प्रगति कर सकता है। इसलिए, इसमें मनुष्य मुख्यतः शरीर के लिए ही उद्योग करता है।

गांधी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में इसके कई उदाहरण दिये हैं। मुसलन, यूरोप के लोग अच्छे घरों में रहने को सभ्यता की निशानी मानते हैं। अच्छे कपड़े पहनने और पाँच गोलिएँ छोड़ सके ऐसी चक्कर वाली बन्दूक के इस्तेमाल को सभ्यता की निशानी मानते हैं। भाप के यन्त्र से हल चलाकर एक आदमी बहुत सारी जमीन जोत सकता है और बहुत-सा पैसा जमा कर सकता है, यह भी सभ्यता की निशानी है। गांधी आगे लिखते हैं- "पहले लोग कुछ ही किताबें लिखते थे और वे अनमोल मानी जाती थी। आज हर कोई चाहे जो लिखता है, छपवाता है और लोगों के मन को भरमाता है। पहले लोग बैलगाड़ी से रोज बारह कोस की मंजिल तय करते थे। आज रेलगाड़ी से चार सौ कोस की दूरी तय कर लेते हैं।... पहले लोग लड़ना चाहते थे, तो एक दूसरे से शरीर-बल आजमाते थे। आज तो तोप के एक गोले

से हजारों जानें ली जा सकती हैं।... पहले जैसे रोग नहीं थे वैसे रोग आज लोगों में पैदा हो गये हैं।" दुर्भाग्य से, यही सब सभ्यता की निशानी मान ली गयी है, जबकि वास्तव में यह घोर असभ्यता है।

गांधी के अनुसार पश्चिमी सभ्यता में नीति या धर्म की बात नहीं है। यह सभ्यता तो अधर्म है और यह जहाँ-जहाँ फैल रही है वहाँ के लोग आधे पागल जैसे देखने में आते हैं। इस सभ्यता की खूबी यह है कि लोग इसे अच्छा मानकर इसमें कूद पड़ते हैं और फिर वे न तो घर के होते हैं, न घाट के। वे सच बात को भी भूल जाते हैं। यह सभ्यता स्वार्थ से भरी, दम्भपूर्ण और ईश्वर को भी भूलाने वाली है। इसमें अपने (यूरोप के) अलावा अन्य लोगों को तुच्छ एवं असभ्य माना जाता है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करने वाली और खुद भी नाशवान है। इसलिए, इस सभ्यता की चपेट में आए लोग खुद की जलाई हुई आग में जल मरेंगे।

कुल मिलाकर पश्चिमी सभ्यता न केवल भारत, वरन पूरी मानवता के लिए घातक है। इसलिए, गांधी इसका पूरजोर विरोध करते हैं। वे साफ-साफ कहते हैं- "मैं तो यूरोप की आधुनिक सभ्यता का शत्रु हूँ। 'हिन्द स्वराज्य' में मैंने अपने इसी विचार को निरूपित किया है। यह बताया है कि भारत की दुर्दशा के लिए अंग्रेज नहीं बल्कि हमलोग ही दोषी हैं, जिन्होंने आधुनिक सभ्यता स्वीकार कर ली है। यदि हम इस सभ्यता को छोड़कर इस सच्ची धर्म-नीति से युक्त अपनी प्राचीन सभ्यता पुनः अपना लें, तो भारत आज ही मुक्त हो सकता है।" इस तरह गांधी भारतीयों से अपनी जड़ों की ओर लौटने की अपील करते हैं और भारतीय सभ्यता-संस्कृति को बचाने एवं अपनाने की प्रेरणा देते हैं।

संपर्क:

दर्शनशास्त्र विभाग,
टी.एन.बी. कॉलेज,
भागलपुर, बिहार

आज के समाज में गांधीजी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त

प्रो. अमीन रतिलाल

जो मानसिक रूप से
अपरिग्रही है, उसके पास
चाहे जितना परिग्रह हो, सत्ता
और सम्पत्ति हो तो भी वह
उसके प्रति अनासक्त रहता है
और यदि वह अकिंचन हो
तो उसे सत्ता और संपत्ति की
परवाह नहीं होती। जनक राजा
और शुकदेवजी इसके उत्तम
उदाहरण हैं

सामान्यतः मानवसमाज सलामती की आकांक्षा रखता है। इलिए भौतिक सलामती की इच्छा से मानवी संचय की ओर बढ़ता है, किन्तु संचय की मात्रा में विवेक न रखा जाए तो व्यक्तिगत संग्रह समाज के लिए शापित हो जाता है। व्यक्ति संचय बढ़े वैसे सामाजिक विषमता भी बढ़े, इसलिए सम्पत्ति और मिल्कियत के संचय को किसी भी समाज ने मनुष्य जाति के आदर्श रूप में नहीं स्वीकारा। सलामती की व्यवहार, बुद्धि में से मनुष्य में परिग्रह वृत्ति उत्पन्न हुई। समाज में सर्वत्र दिखाई देनेवाली आर्थिक विषमता मूल मनुष्य वृत्ति में है, इसलिए प्राचीन काल से अपरिग्रह का आदर्श प्रबोधित किया गया है।

अपरिग्रह, मानसिक वृत्ति है। यह वृत्ति विकसित हो तो परिग्रह का उपयोग समाज के हित में हो सकता है। जो मानसिक रूप से अपरिग्रही है, उसके पास चाहे जितना परिग्रह हो, सत्ता और सम्पत्ति हो तो भी वह उसके प्रति अनासक्त रहता है और यदि वह अकिंचन हो तो उसे सत्ता और सम्पत्ति की परवाह नहीं होती। जनक राजा और शुकदेवजी इसके उत्तम उदाहरण हैं, किन्तु जो मनुष्य मानसिक रूप से परिग्रही हो और अकिंचन हो तो उसे अपनी निर्धनता और यदि धनिक हो तो चाहे कितने धन से भी उसे पूरा सन्तोष मिलेगा नहीं, परिग्रह वृत्तिवाला गरीब निष्फल धनिक है। धन कमाने की होड़ में वह निष्फल रहा है बस इतना ही। ये दोनों व्यवस्थाओं मानव जीवन को क्षुब्ध करनेवाली हैं। सत्ता और सम्पत्ति की स्पर्धा में सफल होनेवाले का उन्माद और निष्फल होनेवाले की हताशा स्वस्थ समाज रचना के लिए घातक है। इन दोनों अवस्था में से उबारने के लिए गांधीजी ने हमें विकेन्द्रीकरण और 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त दिये।

'ट्रस्टीशिप' शब्द 'ट्रस्ट' में से बना है। 'ट्रस्ट' माने विश्वास। मनुष्य-मनुष्य के बीच का सामाजिक, धार्मिक, राजकीय, आर्थिक इत्यादि सर्वसामान्य व्यवहार विश्वास की बुनियाद पर ही रचे जाते हैं। विश्वासभंग होने से बखेड़े और संघर्ष उत्पन्न होते हैं, इसलिए 'ट्रस्टीशिप' को विनाबाजी ने 'विश्वस्तवृत्ति' नाम दिया और उसे शिक्षा से परिपुष्ट करने बात की।

जिस प्रकार राज्य के हाथ में चाहिए उससे अधिक सत्त व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को नुकसान पहुँचाती है, वैसे व्यक्ति के हाथ में हद से ज्यादा धन समाज की समानता के लिए घातक है। इसलिए 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त द्वारा गांधीजी हमारे समक्ष अपरिग्रह साधन का व्यवहार उपाय पेश करते हैं, उस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य सुख से अपना निर्वाह कर सके और रह सके इसके लिए आवश्यक हो, उसके सिवा उसके अपने आधीन रहनेवाली जो कुछ भी शक्ति हो तो उन सबका उसे 'ट्रस्टी' बनकर समाज के लित में उपयोग करना चाहिए।

अर्थप्राप्ति का प्राचीन आदर्श भी ऐसा है। कि मनुष्य न्यायोचित मार्ग और समाज उपयोगी कार्यों द्वारा कुछ धन कमाता है, उसमें वह मितव्ययी बने और अपनी आवश्यकताएँ पूरी होने के बाद जो धन बचे, उस धन का खुद मालिक नहीं किन्तु संस्थक अर्थात् 'ट्रस्टी' बनकर उसका उपयोग जनकल्याण के लिए करे। उचित साधनों द्वारा धनोपार्जन करके उसका व्यय करते व्यक्तिगत और सामाजिक श्रेय को नज़र समक्ष रखना चाहिए।

औद्योगिक युग ने मालिकों को सम्पत्ति प्राप्त करने की ऐसी कुंजी दे दी है कि किसके द्वारा पूँजी का केन्द्रीकरण और श्रम का सामाजीकरण होता गया। शोषण और बचनों द्वारा निजी मिलिकयत के होते ऐसे बेहद बढ़ाव से और उसमें उत्पन्न होनेवाले अनिष्टों में घबरा उठे कुछ समाजवादिओं ने सम्पत्ति को चोरी मानी, कइयों ने संपत्ति को हत्या मानी। गांधीजी ने भी उसे चोरी मानी है। मार्क्स ने धनिकों की इस लूट के विरुद्ध मजदूरों को संगठित बनकर संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। साम्यवादिओं ने सम्पत्ति लूटनेवालों की सम्पत्ति हरण करने के लिए हिंसा की हिमायत की। समाजवादिओं ने भारी कर और अन्य कानूनी मार्गों द्वारा सामाजिक नियन्त्रण की बात की।

आर्थिक विषमता ने आज की दुनिया में तंगदिली बढ़ा दी है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत स्वामित्व, सम्पत्ति में निरन्तर वृद्धि करने के प्रलोभन में से जन्मनेवाली स्पर्धा, जनसमाज की आवश्यकताओं का ख्याल रखे बिना होनेवाला उत्पादन, उसके लिए

बाजार की अर्थव्यवस्था, प्रचार-विज्ञापन द्वारा लोगों के चित्त पर विशिष्ट प्रकार के संस्कार डालने का प्रयत्न और अन्त में पूँजीवादिओं के ही हित में राज की नीति निर्धारित करने की नेम इत्यादि कारणों को लेकर उत्पन्न होनेवाले शोषण, विषमता, हिंसा और गुलाम सेवकों में से बाहर निकलने के लिए गांधीजी मजदूर और मालिक के बीच सहकार भरा और संवादी सम्बन्ध स्थापित करने की बात करते हैं और 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धान्त हमारे सामने रखते हैं किन्तु, श्री किशोरलालभाई कहते हैं वैसे 'मिलिकयत' के निजी परिग्रह को वे सहन करते हैं, उसका कारण यह नहीं है कि उन्हें मिलिकयत का या परिग्रह का का मोह है या मनुष्यजाति के उत्कर्ष के लिए मिलिकयत का संग्रह आवश्यक है वे मानते हैं, किन्तु निजी संग्रह बढ़ाने और संग्रह करने की प्रथा का अन्त लाने के लिए कोई सत्याग्रही मार्ग उन्हें मिला नहीं है।"

सम्पूर्ण अपरिग्रह का आदर्श गांधीजी स्वीकारते हैं और आज की रोटी आज कमा लेने की और कल की रोटी के लिए पसीना बहाने को तैयार रहने की बात करते हैं, किन्तु गांधीजी यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि मनुष्यजाति के पास परिग्रह छुड़ाने का काम सरल नहीं है, इसलिए जो कानूनन सम्पत्ति रखते हैं, उन्हें वे सम्पत्ति के 'ट्रस्टी' अभिभावक बनकर लोकहितार्थ उसका उपयोग करने को कहते हैं। परिवार के जीवन में जो प्रेम का सिद्धान्त काम करता है, उसका व्यापक स्वरूप 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त में है।

अर्थप्राप्ति का प्राचीन आदर्श भी ऐसा है। कि मनुष्य न्यायोचित मार्ग और समाज उपयोगी कार्यों द्वारा कुछ धन कमाता है, उसमें वह मितव्ययी बने और अपनी आवश्यकताएँ पूरी होने के बाद जो धन बचे, उस धन का खुद मालिक नहीं किन्तु संस्थक अर्थात् 'ट्रस्टी' बनकर उसका उपयोग जनकल्याण के लिए करे। उचित साधनों द्वारा धनोपार्जन करके उसका व्यय करते व्यक्तिगत और सामाजिक श्रेय को नज़र समक्ष रखना चाहिए।

जिस प्रकार परिवार में बुजुर्ग का ध्यान निरन्तर अपने वारिस पर होता है और उसकी लियाकत विकसित करने सर्व प्रयत्न करते हैं और वह लियाकत विकसित होने पर बुजुर्ग उसे जिम्मेदारी सौंपकर खुद मुक्ति पाते हैं, उसी प्रकार कानूनन सम्पत्ति पानेवाले धनिकों को नैतिक दृष्टि से उसे समाज की मालिक मानकर अपनी

गांधीजी मानते थे कि राज्य यदि पूँजीवाद को हिंसा से दबाने की कोशिश करे तो खुद ही हिंसा के जाल में फँस जाएगा। राज्य जड़ यन्त्र तथा हिंसा का केन्द्रित और संगठित स्वरूप होने के कारण अहिंसक समाज रचना में तो सत्ता का भी विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। राज्य जड़ यन्त्र है परन्तु व्यक्ति में आत्मा होती है, इस कारण धनिकों के हृदय परिवर्तन की ओर ही महात्मा गांधीजी का ज्यादा झुकाव रहा है। 'ट्रस्टशिप सम्पत्ति के स्वामित्व और उपभोग का नियमन करने के लिए कानून बनाने का निषेध नहीं करता किन्तु इसमें पहले धनिकों का सामाजिक जिम्मेदारी के प्रति सभान करने के वे हिमायती हैं।

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही उसमें से आवश्यक सम्पत्ति का उपयोग करके बाकी सम्पत्ति का लोगों के कल्याण में विनियोग करना चाहिए। दूसरी ओर गांधीजी सही सम्पत्ति को नहीं किन्तु मजदूरी को बताते हैं और कहते हैं कि जिस दिन मजदूरों को अपनी सही सम्पत्ति का ज्ञान होगा, उस दिन उसका शोषण कोई नहीं कर सकेगा।

कुछ समालोचकों ने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को आडम्बर बताकर उसकी ओट में धनिक और सत्ताधीश अपनी मालिक और सत्ता रखना चाहते हैं, ऐसी आलोचना की है। अंग्रेजों ने कई बार कहा था कि - हिन्दुस्तान में अंग्रेज सरकार हिन्दी प्रजा के कल्याण

हित में है ऐसा मानते थे, किन्तु थोड़े ही समय में उनका भ्रम दूर हुआ और उन्होंने उसके विरुद्ध बगावत की। गांधीजी सत्य के उपासक होने के कारण शब्दों को उसके सही अर्थ में पूरे गाम्भीर्य के साथ प्रयोजित करते हैं। उससे होनेवाली समस्या को दूर करने को भी वे हमेशा सावधान रहते हैं। लंडन में गोलमेज परिषद में दिनांक 19-11-1931 के दिन उन्होंने कहा था, "परिस्थिति को (सबके हित में) समान करने के लिए योग्य बातें मेरे मन में हैं। मुझे भय है कि धनिक जमींदार कही जानेवाली उच्च जाति और अन्त में विज्ञान की टेकनीक द्वारा ब्रिटिश शासकों ने दलित, पीड़ित और पतितों को जिस दलदल में फँसा दिया है, उसमें से उन्हें बाहर निकालने के लिए भारत को आनेवाले अनेक वर्षों तक लगा रहना पड़ेगा।

हमें उन लोगों को दलदल से बाहर निकालना हो तो जिस बोझ से वे लोग कुचले जा रहे हैं, उनमें से उनका छुटकारा करना चाहिए, वह राष्ट्रीय इमारत को बुनियादी आवश्यक कर्तव्य रहेगा। यदि जमींदार धनिक या विशेषधिकार भुगतनेवाले लोगों का उनके साथ भेदभावभरा बर्ताव रखा जाता होगा तो मैं उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करूँगा, परन्तु मैं उन्हें उस दिशा में मदद नहीं करूँगा, क्योंकि मैं तो ट्रस्टीशिप की प्रक्रिया में उनकी ज्यादा सहायता चाहता हूँ - इसलिए (स्वतन्त्र भारत में) विधानसभा का पहला काम यह होगा कि दलित प्रजा को कुछ हद तक समान करने के लिए मुक्त हाथों से अनुदान दिया जाए, वह अनुदान किसकी जेब में से आएगा? स्वाभाविक तौर से वह धनिक वर्ग के पास से आएगा।

फिर भी गांधीजी मानते थे कि राज्य (राज्य सरकार) यदि पूँजीवाद को हिंसा से दबाने की कोशिश करे तो खुद ही हिंसा के जाल में फँस जाएगा। राज्य जड़ यन्त्र तथा हिंसा का केन्द्रित और संगठित स्वरूप होने के कारण अहिंसक समाज रचना में तो सत्ता का भी विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। राज्य जड़ यन्त्र है परन्तु व्यक्ति में आत्मा होती है, इस कारण धनिकों के हृदय परिवर्तन की ओर ही महात्मा गांधीजी का ज्यादा झुकाव रहा है। केवल हृदय परिवर्तन से वे रुक नहीं जाते। वे कहते हैं 'ट्रस्टशिप सम्पत्ति के स्वामित्व और उपभोग

के लिए उसके 'ट्रस्टी' बनकर राज करती है। हिन्द की निरक्षर और अज्ञान प्रजा के ट्रस्टी के रूप में वह देश का अधिकार छोड़ नहीं सकती। गांधीजी भी 1915 में हिन्द में आये तब अंग्रेजी राज्य हिन्द के

का नियमन करने के लिए कानून बनाने का निषेध नहीं करता किन्तु इसमें पहले धनिकों का सामाजिक जिम्मेदारी के प्रति सभान करने के वे हिमायती हैं। इसके बावजूद, धनिक स्वेच्छा से 'ट्रस्टी' न बने तो गांधीजी बताते हैं: इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ते ही अहिंसक असहयोग और सविनय निषेध मिले।

गांधीजी तो मजदूर और मालिक दोनों को 'ट्रस्टी' बनाकर मनुष्य की सर्वशक्ति को ईश्वर की देन बताते हैं। इसलिए ही मजदूरों को वे समझाते थे कि पूँजीपतियों के समान ही तुम भी उद्योग के मालिक होने के कारण तुम्हें सह-ट्रस्टी के तौर पर समग्र उद्योग के हित को अपना हित मानना चाहिए और तुम्हारा हमला पूँजीपतियों के अन्याय, अकुशलता, रिश्वत तथा लघुदृष्टि के बोझ के सामने होना चाहिए।

1942 में आगाखन महल में हिरासत के वक्त गांधीजी ने ट्रस्टीशिप के बारे में चर्चा करते हुए कहा था, “रशिया में (रूस में) मिलिकयत वालों की मिलिकयत जब्त करके सभी पूँजी प्रजा में बाँट दी गयी, इसमें क्रान्ति की भावनास फैली, उससे ज्यादा हमारी क्रान्ति महान होगी।” इसके बाद जेल में से बाहर आये तब प्रो. दांतवाला ने ट्रस्टीशिप के बारे में एक मसौदा इस प्रकार तैयार किया था। गांधीजी ने उसमें थोड़े परिवर्तन किये और अन्तिम मसौदा इस प्रकार तैयार हुआ:

- (1) ट्रस्टीशिप आज की पूँजीवादी व्यवस्था को समानता की व्यवस्था में बदल डालने का साधन तेती है। पूँजीवादको जरा भी मौका दिये बिना आज के मिलिकयतवाले वर्गों को अपने सुधारने का मौका देती है। मानव स्वभाव का सदा उत्कर्ष हो सके, इस श्रद्धा पर उसका आरम्भ है।
- (2) समाज अपने कल्याण के लिए मान्य रखे, इनसे विशेष मिलिकयत की निजी मामिकी का हक दसे स्वीकार्य नहीं।
- (3) सम्पत्ति की मालिकी के नियमन तथा उनके उपयोग के लिए कानून करने का अवकाश इसमें है।
- (4) इस प्रकार, राज्य नियन्त्रित ट्रस्टीशिप की व्यवस्था में व्यक्तित्व को स्वार्थी उपभोग के लिए या

समाजहित की अवहेलना करके, सम्पत्ति रखने की या उपयोग करने की छूट नहीं होती।

- (5) मनुष्य के योग्य जीवन निर्वाह के लिए लघुतम वेतन निश्चित करने की दरखास्त की जाती है इसी प्रकार समाज में किसी भी व्यक्ति को ज्यादा से ज्यादा कितनी आमदनी करने देनी चाहिए, उसकी मर्यादा निश्चित करनी चाहिए। ऐसी लघुतम और गुरुतम आमदनी के बीच फर्क उचित, न्यायी और बाजार बदलता रहे ऐसा होना चाहिए। वह फर्क इस प्रकार बदलता रहे कि जिसमें अन्त में फर्क मिट जाए।

गांधीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का स्वरूप व्यक्ति के लोभ या इसकी इच्छा के मुताबिक नहीं, किन्तु समाज की आवश्यकतानुसार निश्चित होगा।

सन्दर्भ - संकेत

- 1) रचनात्मक कार्यक्रम उसका रहस्य और स्थान, गांधीजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद
- 2) गांधीजी के एकादशव्रत, दशरथलाल शाह, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद
- 3) मंगल प्रभात, गांधीजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद
- 4) नयी तालीम नया परिप्रेक्ष्य, सम्पा. एस. सी. प्रभात, प्रकाशन - सिरियल्स पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली
- 5) राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी गांधीजी अनुवाद काशीनाथ त्रिवेदी प्रकाशन - नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद
- 6) आत्मकथा, गांधीजी
- 7) हिन्द स्वराज गांधीजी
- 8) आश्रम संस्मरणो संपादकों
 - 1) वनमाला देसाई 2) मंगला देसाई
 प्रकाशन - रमती आश्रम सूरक्षा अने स्मारक ट्रस्ट, हरिजन आश्रम अहमदाबाद-13

संपर्क:

शांति संशोधन केन्द्र
गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद

स्वच्छ एवं समर्थ भारत

डॉ. सुनीता कुमारी चौरसिया एवं डॉ. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा मुहैया किये गये साधनों के जरिये हिन्दुस्तान की आजादी मिल जाने के कारण मौजूदा स्वरूप वाली कांग्रेस का अब खतम हुआ-यानी प्रचार के वाहन और धारासभा की प्रवृत्ति चलानेवाले तन्त्र के नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गयी है।

महात्मा गांधी अपने महाप्रयाण के एक दिन पूर्व 29 जनवरी 1948 को एक वक्तव्य लिखा था, जो उनका आखिरी वसीयतनामा माना जाता है। उसमें उन्होंने लिखा है कि 'देश का बटवारा होते हुए भी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा मुहैया किये गये साधनों के जरिये हिन्दुस्तान की आजादी मिल जाने के कारण मौजूदा स्वरूप वाली कांग्रेस का अब खतम हुआ-यानी प्रचार के वाहन और धारासभा की प्रवृत्ति चलानेवाले तन्त्र के नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गयी है। शहरों और कस्बों से भिन्न उसके सात लाख गाँवों की दृष्टि से हिन्दुस्तान को सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है।' गांधी ने 'भारत और उसका सन्देश' में कहा कि 'भारत मेरे लिए दुनिया का सबसे प्यारा देश है, इसलिए नहीं कि वह मेरा देश है, लेकिन इसलिए कि मैंने इसमें उत्कृष्ट अच्छाई का दर्शन किया है। भारत की हर चीज मुझे आकर्षित करती है। सर्वोच्च आकांक्षाएँ रखनेवाले किसी व्यक्ति को अपने विकास के लिए जो कुछ चाहिए, वह सब उसे भारत में मिल सकता है।'²

गांधी के सपनों का स्वच्छ एवं समर्थ भारत की रूपरेखा 'मेरे सपनों का भारत' नामक पुस्तक के संपादित अंशों में देखा जा सकता है जो अधिकतर 'यंग इंडिया', 'हरिजन' आदि हिन्दी एवं अँग्रेजी सप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित हुए हैं। जनवरी 1915 को गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे उन्होंने अपने राजनीतिक गुरु गोपालकृष्ण गोखले के परामर्श पर भारत को जानने के लिए भ्रमण किये। चम्पारण-सत्याग्रह, खेड़ा-सत्याग्रह, तिलक स्वराज्य फंड, राष्ट्रीय विद्यापिठों की स्थापना, चौरी-चौरा कांड, सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित, उपवास, दांडी-यात्रा, गोलमेज सम्मेलन, सत्याग्रह प्रारम्भ खादी ग्रामोद्योग, बुनियादी तालीम, भारत छोड़ो आन्दोलन स्वतन्त्रता-प्राप्ति, नोआखाली-कलकत्ता में उपवास, दिल्ली में आमरण-अनशन की गाथा के उपरान्त 30 जनवरी को गांधीजी का महाप्रयाण हो गया। उनका अतिशय लगाव देश से रहा। अतएव उन्होंने स्वीकारा था कि मैं भारत की भक्ति करता हूँ, क्योंकि मेरे पास जो कुछ भी है वह सब उसी का दिया हुआ है। मेरा पूरा विश्वास है कि उसके पास सारी दुनिया के लिए एक सन्देश है। उसे यूरोप का अन्धानुकरण नहीं करना है।'³

गांधी के सपनों को भारत में उनकी इच्छा ऐसे भारत के लिए कोशिश करना था जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि वह उनका देश है— जिसके निर्माण में उनकी आवाज़ का महत्व है। उनका मानना था कि 'मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूँगा, जिसमें ऊँचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध सम्प्रदायों में पूरा मेलजोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता के या शराब और दूसरी नशीली चीजों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें स्त्रियों को वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को। चूँकि शेष सारी दुनिया के साथ हमारा सम्बन्ध शान्ति का होगा, यानी न ही हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी के द्वारा अपना शोषण होने देंगे, इसलिए हमारी सेना छोटी से छोटी होगी। ऐसे सब हितों का जिनका करोड़ों मूक लोगों के हितों से कोई विरोध नहीं है, पूरा सम्मान किया जाएगा, फिर वे देशी हों या विदेशी।'

गांधीजी ने अपने सपनों का स्वराज्य की रूपरेखा प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा है कि मेरे... सपनों के स्वराज्य में जाति (रेस) या धर्म के भेदों को कोई स्थान नहीं हो सकता। उस पर शिक्षितों या धनवानों का एकाधिपत्य नहीं होगा। वह स्वराज्य सबके लिए—सबके कल्याण के लिए होगा सबकी गिनती में किसान तो आते ही हैं, किन्तु लूले, लँगड़े, अन्धे और भूख से मरने वाले लाखों—करोड़ों मेहनतकश मजदूर भी अवश्य आते हैं।⁵ उन्होंने कहा सच्चा स्वराज्य सरकारी नियन्त्रण से भुक्त हो, क्योंकि जब राजसत्ता जनता के हाथ में आती है, तब प्रजा की आजादी में होनेवाले हस्तक्षेप की मात्रा कम-से-कम हो जाती है। सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुए दस-बीस आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हर एक गाँव के लोगों द्वारा चलायी जानी चाहिए।⁶ केन्द्रीकरण से जकड़न की प्रवृत्ति व्याप्त होती है अतएव गांधीजी राजनीति में विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे। उनका मानना है कि आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हर एक गाँव में लोगों की हुकूमत या पंचायत का राज होगा; उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हर एक गाँव को अपने पाँव पर खड़ा होना होगा— अपनी जरूरत खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। ऐसा समाज अनगिनत गाँवों का बना होगा; उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक

के बाद एक की शक्ल में होगा; जिन्दगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहाँ ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहाँ तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्दु होगा। वह व्यक्ति हमेशा अपने गाँव की खातिर मिटने को तैयार रहेगा।⁷

गांधीजी ने कहा, सत्य और अहिंसा को ग्रामीण जीवन की सादगी में ही प्राप्त कर सकते हैं और लोगों का शासन पंचायती के द्वारा चलेगा। उन्होंने कहा, हिन्दुस्तान के हर एक गाँव में कभी पंचायती राज कायम हुआ, तो मैं अपनी इस तस्वीर की सचाई साबित कर सकूँगा, जिसमें सबसे पहला और सबसे आखिरी, दोनों बराबर होंगे या यों कहिए कि न कोई पहला होगा, न कोई आखिरी। (यहाँ पंचायती राज से प्रचलित 'पंचायती राज' का भ्रम नहीं होना चाहिए) उन्होंने ग्राम-सुधार आन्दोलन में केवल ग्रामवासियों

के ही शिक्षण की बात नहीं है, बल्कि कहा कि शहरवासियों को भी उससे इतना ही शिक्षण लेना है। इस काम को उठाने के लिए शहरों से जो कार्यकर्ता आए, उन्हें (अपने में) ग्राममानस का विकास करना है और ग्रामवासियों की तरह रहने की कला सीखनी है। इसका यह

अर्थ नहीं कि उन्हें ग्रामवासियों की तरह भूखे मरना है, लेकिन इसका यह अर्थ जरूर है कि जीवन की उनकी पुरानी पद्धति में आमूल परिवर्तन होना चाहिए।⁸ इसका एक ही उपाय है हम जाकर उनके बीच में बैठ जाएँ और उनके आश्रय दाताओं की तरह नहीं बल्कि उनके सेवकों की तरह दृढ़ निष्ठा से उनकी सेवा करें; हम उनके भंगी बन जाएँ और उनके स्वास्थ्य की रक्षा करनेवाले परिचारक बन जाएँ। हमें तो गाँवों के सुधार के इस छोटे काम में लग जाना चाहिए जो आज जरूरी है और तब भी जरूरी होगा, जब हम अपना उद्देश्य (स्वराज्य) प्राप्त कर चुकेंगे। सच तो यह है कि ग्राम कार्य की यह

अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। ऐसा समाज अनगिनत गाँवों का बना होगा; उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा।

सफलता स्वयं हमें अपने उद्देश्य (स्वराज्य) के निकट ले जाएगी।⁹ गांधीजी का उपर्युक्त कथन स्वराज्य प्राप्ति के अन्तिम दौर का था साथ ही स्वच्छता एवं सफाई की प्रधानता पर बहुत बल दिया था। उन्होंने गाँवों की त्रिविध बीमारी का उल्लेख किया है और कहा है कि हमें गाँवों को अपने चंगुल में जकड़ रखनेवाली बीमारी का इलाज करना है, वह इस प्रकार है-

1. सार्वजनिक स्वच्छता की कमी
2. पर्याप्त और पोषक आहार की कमी
3. ग्रामवासियों की जड़ता।

ग्रामवासी जनता अपनी उन्नति की ओर से उदासीन है। स्वच्छता के आधुनिक उपायों को न तो समझती है और न उनकी कद्र करती है। ग्रामीणजन अपने खेतों को जोतने-बोने या जिस किस्म का परिश्रम वे करते आये हैं, वैसा परिश्रम करने के सिवा अधिक कोई श्रम

हर एक गाँव में गाँव की अपनी एक नाटकशाला और सभा-भवन रहेगा। पीने के लिए सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुओं और तालाबों पर गाँव का पूरा नियन्त्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी।

करने के लिए वे राजी नहीं है। ये कठिनाइयाँ वास्तविक और गम्भीर हैं। लेकिन हमें उनसे घबराने या हतोत्साह होने की जरूरत नहीं है। हमारे व्यवहार में धीरज होना चाहिए। हम उन परिचारिकाओं की स्थिति में हैं जो उन्हें सौंपे हुए बीमारों को सिर्फ इसीलिए छोड़कर जाने के लिए स्वतन्त्र नहीं है कि उन बीमारों की बीमारी असह्य है।¹⁰

‘भारत माता ग्रामवासिनी, खेतों में फैला है श्यामल’ सुमित्रानन्दन पन्त की यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि भारत की अधिकांश आबादी स्वतन्त्रता के पैसठ वर्ष बाद भी गाँव में रहती है अतएव समर्थ भारत का लक्ष्य गाँवों के सबलीकरण पर सम्भव है। गांधी के सपनों का स्वच्छ एवं समर्थ भारत हेतु उनकी ग्रामस्वराज्य की कल्पना काफी स्पष्ट है एवं दिशा निर्देश के लिए काफी है। गांधी ने कहा ‘ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यह एक ऐसा पूर्ण प्रजातन्त्र होगा, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए-जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा- यह

परस्पर सहयोग से काम लेना। इस तरह हर एक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़ों के लिए कपास खुद पैदा कर ले। (इसके अलावा) उसके पास इतनी सुरक्षित जमीन होनी चाहिए, जिसमें ढोर चर सकें और गाँव के बड़ों व बच्चों के लिए मनबदलाव के साधन और खेल-कूद के मैदान वगैरह का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी फसल बोएगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके, (लेकिन) वह गाँजा, तम्बाकू, अफीम वगैरह की खेती से बचेगा। हर एक गाँव में गाँव की अपनी एक नाटकशाला और सभा-भवन रहेगा। पीने के लिए सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुओं और तालाबों पर गाँव का पूरा नियन्त्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी। जहाँ तक हो सकेगा, गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जाएँगे। जात और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद आज हमारे समाज में पाये जाते हैं। वैसे इस ग्राम-समाज में बिल्कुल नहीं रहेंगे।¹¹सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज शासन-बल होगी। गाँव का शासन चलाने के लिए हर गाँव के पाँच आदमियों की एक पंचायत चुनी जाएगी। गांधी के चिन्तन में आशावादी दृष्टिकोण था। अतएव बाद के काल के लिए उन्होंने कहा कि आज भी कोई गाँव चाहे तो अपने यहाँ इस तरह का प्रजातन्त्र कायम कर सकता है। उसके इस काम में मौजूदा सरकार भी ज्यादा दस्तदाजी नहीं करेगी। इस ग्राम-शासन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आधार रखनेवाला सम्पूर्ण प्रजातन्त्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकार का निर्माता भी होगा। सम्भव है, ऐसे गाँव को तैयार करने में एक आदमी की पूरी जिन्दगी खत्म हो जाए।¹²

गांधी ने गाँवों का पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में कहा कि मेरी कल्पना की ग्राम-इकाई मजबूत से मजबूत होगी। मेरी कल्पना के गाँव में 1000 आदमी रहेंगे। ऐसे गाँव को अगर स्वावलम्बन के आधार पर अच्छी तरह संगठित किया जाए, तो वह बहुत-कुछ कर सकता है। आदर्श भारतीय ग्राम इस तरह बसाया जाएगा कि उसमें आसनी से स्वच्छता की पूरी-पूरी व्यवस्था रहे। उसकी झोपड़ियों में पर्याप्त प्रकाश और हवा का प्रबन्ध होगा और उसके निर्माण में जिन सामान का उपयोग होगा वे ऐसे होंगे, जो

गाँव के आसपास पाँच मील त्रिज्या के अन्दर आनेवाले प्रदेश में मिल सकें। गाँव की गलियाँ और सड़कें जिस धूल को हटाया जा सकता है उससे मुक्ति होंगी। उस गाँव में उसकी आवश्यकता के अनुसार कुएँ होंगे और सबके लिए एक सभा-भवन होगा, मवेशियों के चरने के लिए गाँव का चरागाह होगा, सहकारी डेरी होगी, प्राथमिक और माध्यमिक शालाएँ होंगी जिनमें मुख्यतः औद्योगिक शिक्षा दी जाएगी और झगड़ों के निपटारे के लिए ग्राम-पंचायत होंगी। वह अपना अनाज, साग-सब्जियाँ और फल तथा खादी खुद पैदा कर लेगा।¹³

देहातवालों में ऐसी कला और कारीगरी का विकास होना चाहिए, जिससे बाहर उनको पैदा की हुई चीजों की कीमत दी जा सके। जब गाँवों का पूरा-पूरा विकास हो जाएगा, तो देहातियों की बुद्धि और आत्मा को सन्तुष्ट करनेवाली कला-कारिगरी के धनी स्त्री-पुरुषों की गाँवों में कमी नहीं रहेगी। गाँव में कवि होंगे, चित्रकार होंगे, शिल्पी होंगे, भाषा के पंडित और शोध करनेवाले लोग भी होंगे। थोड़े में, जिन्दगी की ऐसी कोई चीज न होगी जो गाँव में न मिले। आज हमारे देहात उजड़े और कूड़े-कचरे के ढेर बने हुए हैं। कल वहीं सुन्दर बगीचे होंगे और ग्रामवासियों को ठगना या उनका शोषण करना असम्भव हो जाएगा। इस तरह के गाँवों की पुनर्रचना का काम आज से ही शुरू हो जाना चाहिए और गाँवों की पुनर्रचना का (यह) काम काम-चलाऊ नहीं, बल्कि स्थायी होनी चाहिए।¹⁴

गांधीजी का मानना था कि गाँवों की स्थिति में सुधार लाए बिना देश की स्थिति में सुधार सम्भव नहीं है क्योंकि उन्होंने माना था कि (अभी) शहरों द्वारा ग्रामीणों और उनकी सम्पत्ति हरण हो रहा है..... मेरी योजना के अन्तर्गत, ऐसी कोई चीज शहरों द्वारा नहीं बनाने दी जाएगी, जो उतनी ही अच्छी तरह गाँवों में बनायी जा सकती हो। शहरों का सही उपयोग यह है कि वे गाँवों में बनी हुई चीजों के निकास के केन्द्रों गाँवों को निश्चित रूप से स्वावलम्बी बनना चाहिए। महात्मा गांधी ने अपने समय के सात लाख गाँवों की अर्थ-रचना को सामने रखते हुए स्पष्ट चेतावनी दी थी “यदि ग्रामोद्योगों का लोप हो गया, तो सात लाख गाँवों का सर्वनाश हो गया समझिए।” किन्तु भारत देश न यह 5 किलोमीटर के भीतर में उपलब्ध सामग्री का उपयोग करने पर पहल कर पाया न ही मंजूरी को याद कर पाया।

आचार्य राममूर्ति गाँव का विश्लेषण करते हैं कि देश की समस्या भी गाँव में है और समस्याओं के समाधान की कुंजी भी गाँव में है। इन दिनों गाँव की पूँजी गाँव से भाग रही है। जिसके पास गाँव में पैसा हो जाता है, वह उसे शहर के किसी न किसी कारोबार में लगाने शहर चला जाता है। अगर गाँव की पूँजी गाँव से निकल गयी तो दूसरी भाषा में गाँव की लक्ष्मी गाँव से निकल गयी। अगर गाँव का पढ़ा-लिखा युवक गाँव से निकल गया तो गाँव की सरस्वती गाँव से निकल गयी। जवान मेहनत करने वाला मजदूर निकल गया तो गाँव की शक्ति गाँव से निकल गयी। पूँजी यानी लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति से वंचित गाँव जिन्दगी की लड़ाई कैसे जीतेगा? एक और बात, जो गाँव में हम देखते हैं, वह यह है कि-एक गाँव आज दुर्योधन का दरबार बना हुआ है। क्या होता है उस दरबार में? द्रोपदी का चीरहरण और बड़े-बड़े श्रेष्ठीजन बैठकर तमाशा देखते थे। यह ख्याति है दुर्योधन दरबार की। आज गाँव में पुलिस तो है, लेकिन सुरक्षा नहीं है। पड़ोस में न्यायालय है, लेकिन न्याय नहीं है। विद्यालय है, लेकिन बड़ी-से बड़ी अनीति हो जाए, बड़े से बड़ा अन्याय हो जाए, उसको कोई सुनने वाला नहीं है।¹⁵

आज गाँव में पुलिस तो है, लेकिन सुरक्षा नहीं है। पड़ोस में न्यायालय है, लेकिन न्याय नहीं है। विद्यालय है, लेकिन बड़ी-से बड़ी अनीति हो जाए, बड़े से बड़ा अन्याय हो जाए, उसको कोई सुनने वाला नहीं है।

आज भी हम गाँव को देख सकते हैं- पंचायती राज हुआ है या नहीं, न हुआ हो, लेकिन पाँच लोगों का राज्य तो हुआ। नेता का राज्य हुआ, अफसर का राज्य हुआ, गाँव के मुखिया का राज्य हुआ, महाजन का राज्य हुआ, और उन सबसे ऊपर गुंडे का राज्य हो रहा है।¹⁶ कुछ वर्ष पूर्व तक स्थिति काफी भयावह थी परन्तु उसमें अपेक्षाकृत सुधार हुआ है। गांधीजी ने एक बार कहा था स्वच्छता आजादी से महत्वपूर्ण है। उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम में गाँव की सफाई को 18 कार्यक्रमों में रखा था। गांधी का यह भी मानना था कि ‘श्रम और बुद्धि के बीच जो अलगाव हो गया है, उसके कारण हम अपने गाँव के प्रति कितने लापरवाह हो गए थे हैं कि वह ऐक

गुनाह ही माना जा सकता है। नतीजा यह हुआ है कि देश में जगह-जगह सुहावने और मनभावने छोटे-छोटे गाँव के बदले हमें घूरे- जैसे गाँव देखने को मिलते हैं। बहुत से या यों कहिए कि करीब-करीब सभी गाँवों में घुसते समय जो अनुभव होता है, उससे दिल को खुशी नहीं होती। गाँव के बाहर और आसपास जितनी गन्दगी होती है और वहाँ इतनी बदबू आती है कि अकसर गाँव में जानेवाले को आँख मुँदकर और नाक दबाकर जाना पड़ता है।¹⁷ गांधी का यह कहना उचित ही है कि 'ज्यादातर काँग्रेसी गाँव के ही बाशिन्दे होते थे, अगर वैसा ही है तो उनका यह फर्ज होता हो जाता है कि वे अपने गाँव को सब तरह से सफाई के नमूने बनाएँ। लेकिन गांधीजी ने अफसोस के साथ उल्लेख किया है कि गाँववालों के हमेशा के यानी रोज-रोज के जीवन में शरीक होने या उनके साथ धुलने-मिलने को उन्होंने कभी अपना कर्तव्य माना ही नहीं। हमने राष्ट्रीय या सामाजिक सफाई को न तो जरूरी गुण माना, और न उसका विकास ही किया। यों रिवाज के कारण हम अपने ढंग से नहा-भर लेते हैं, मगर जिस नदी, तालाब या कुओं के किनारे हम श्रद्धा या वैसी ही दूसरी कोई धार्मिक क्रिया करते हैं और जिन जलाशयों में पवित्र होने के विचार से हम नहाते हैं, उनके पानी को बिगाड़ने या गन्दा करने में हमें कोई झिझक नहीं होती। हमारी इस कमजोरी को मैं एक बड़ा दुर्गुण मानता हूँ। इस दुर्गुण ही यह नतीजा है कि हमारे गाँवों की और हमारी पवित्र नदियों के पवित्र तटों की लज्जाजनक दुर्दशा और गन्दगी से पैदा होने वाली बीमारियों हमें भोगनी पड़ती हैं।'¹⁸

स्वतन्त्रता के पूर्व ही 1941 में गांधीजी ने पहली बार 'रचनात्मक कार्यक्रम उसका रहस्य और स्थान' में जिन बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है अगर हमलोग उस दिशा में थोड़ा भी जाते तो भारत के आधिकांश शहरों-गाँवों, नदियों, सार्वजनिक स्थानों, पर्यटन स्थलों, धार्मिक स्थलों की स्थिति इतनी शर्मसार करने वाली नहीं होती। कुछ हद तक जब अस्थित्व का संकट बढ़ने लगा तो सजगता आई, परिणामस्वरूप 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के अनुसार, स्वच्छता को 11वीं अनुसूची में शामिल किया गया है। इसके अनुसार सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान के कार्यान्वयन में पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका है। शौचालयों के निर्माण एवं अपशिष्ट पदार्थों के सुरक्षित निपटान के माध्यम से वातावरण स्वच्छ रखने के सम्बन्ध में

एकजुटता सुनिश्चित करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों एवं गैर-सरकारी संगठनों का भी सहयोग लिया जा रहा है। इसके सार्थक परिणाम भी सामने आये हैं। सरकारी मशीनरी के साथ ही स्वैच्छिक संगठनों एवं गैर-सरकारी संगठनों ने लोगों को जागरूक करने की दिशा में कहीं महत्वपूर्ण योगदान किया है। सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान (टी.एस.सी.) के तहत 11 वीं योजना के अन्त तक करीब 2.4 करोड़ और घरों में भी स्वच्छता सम्बन्धी सुविधाएँ उपलब्ध करा दी गयी। प्रतिवर्ष लगभग 1.2 करोड़ ग्रामीण घरों में स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहैया करायी जा रही हैं। 12 वीं पंचवर्षीय योजना में 3.18 करोड़ परिवारों को स्वच्छता सुविधाएँ उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है। केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मन्त्रालय की ओर से इस लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में अभी से प्रयास शुरू हो गया है। यही वजह है कि पंचायतों एवं अन्य संस्थाओं को व्यक्तिगत स्तर पर भी जागरूक किया जा रहा है।¹⁹

भारत में स्वच्छता अभियान की स्थिति पर ध्यान दें तो केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम (सी.आर.एस.पी.) 1986 में ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए शुरू किया गया था। परन्तु आशा के अनुरूप प्रगति नहीं हो पायी। समय के अनुरूप इसमें तमाम तरह के बदलाव हुए। 1999 में सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान (टी.एस.सी.) के गठन को बढ़ावा मिला। तब से ग्रामीण विकास मन्त्रालय के अन्तर्गत पेयजल आपूर्ति एवं स्वच्छता विभाग द्वारा कार्यक्रम के क्रियान्वयन की मजबूती के लिए अनेक नए प्रयास किये गये हैं। इस प्रयास को दिनोंदिन बल मिल रहा है। इसका अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि साल 2001 में ग्रामीण स्वच्छता अभियान की पहुँच सिर्फ 22 प्रतिशत आबादी तक थी लेकिन साल 2011 में यह 70 प्रतिशत से ज्यादा लोगों तक पहुँच गयी। वर्ष 2013 में इसे शत-प्रतिशत लोगों तक पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया। अगर हम स्वच्छता अभियान के मामले में विभिन्न राज्यों की स्थिति देखें तो सिक्किम पूर्ण स्वच्छ कवरेज प्राप्त करने वाला देश का पहला निर्मल राज्य हो गया है।²⁰

ग्रामीणों को स्वच्छता कार्यक्रम के प्रति जागरूक करने एवं सरकार की ओर से चलायी जा रही विभिन्न स्वच्छता से सम्बन्धित योजनाओं के शत-प्रतिशत क्रियान्वयन को ध्यान में रखते हुए सरकार ने निर्मल ग्राम पुरस्कार योजना की शुरुआत की। सन् 2005 से संचालित कार्यक्रम में से

एक निर्मल ग्राम पुरस्कार या एनजीपी रहा है। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने एकबार सभा को सम्बोधित करते हुए कहा था 'पहले शौचालय फिर देवालय' उनके इस कथन से कुछ लोग असहमत एवं असहज हुए थे परन्तु व्यापक सोच के आधार पर यह उचित लगता है कि ईश्वर का वास वहाँ होता है जहाँ स्वच्छता होती है। स्वच्छता में व्यक्तिगत घरेलू शौचालय एवं व्यक्तिगत दृष्टिकोण की स्थिति बनती है। खुले में शौच जाने से पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा मिलता है। देश में अभी भी अधिकांश राज्यों में व्यक्तिगत घरेलू शौचालय की स्थिति 50 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत से नीचे है। एक सरकारी सर्वे के आधार पर यह उजागर हुआ है कि सिक्किम और केरल में सभी घरों में शौचालय निर्माण हो चुका है। विभिन्न स्कूलों में शौचालयों के निर्माण मामले में मेघालय, जम्मू एवं कश्मीर, बिहार, हिमाचल, प्रदेश, पश्चिम बंगाल, गोवा, नगालैंड, मध्यप्रदेश, उत्तराखंड, त्रिपुरा, तमिलनाडु और मणिपुर का प्रदर्शन राष्ट्रीय स्तर से नीचे पाया गया था, लेकिन अब इन राज्यों की स्थिति में भी तेजी से सुधार हुआ है।²¹

स्वच्छता पर निर्भरता है समर्थता का, दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, ऐसा कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने 'गांधी के सपनों का भारत' में स्वच्छता को प्रमुखता से चिन्हित किए, क्योंकि अगर भारत को समर्थ बनाना है तो बिना स्वच्छता को अपनाये लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव नहीं है। अतएव 15 अगस्त 2014 को लाल किले से नरेन्द्र मोदी ने अपने भाषण में 'स्वच्छ भारत समर्थ भारत' का आह्वान किया था जिसका राष्ट्रव्यापी असर हो रहा है। देश के प्रत्येक क्षेत्र, संस्थान, समुदाय, वर्ग में अपेक्षाकृत स्वच्छता के प्रति सजगता आयी है तथा कुछ-कुछ फलिभूत भी होने लगा है। 'स्वच्छ गंगा मिशन' तथा स्वच्छता के लिए प्रवासी भारतीयों से विदेशी दौरों पर उन्होंने आर्थिक सहयोग के लिए आह्वान किया है। उसी कड़ी में पिछले नौ माह के कार्यकाल में प्रधानमन्त्री को मिले कुल 455 तोहफों की भी नीलामी की जा रही है। इससे मिलने वाली रकम का उपयोग प्रधानमन्त्री के महत्वाकांक्षी 'स्वच्छ गंगा मिशन' के लिए किया जाएगा। गांधी जयन्ती 2 अक्टूबर, 2014 से राष्ट्रव्यापी स्तर पर स्वच्छता शपथ लिया गया है। उक्त दिशा में गतिविधियाँ बढ़ी हैं। 2019 में जब गांधी की 150वीं जयन्ती मनायी जायेगी तबतक भारत स्वच्छ हो जाए,

ऐसी योजना है। यह अवधारणा सरल नहीं है क्योंकि चुनौतियाँ विकराल हैं परन्तु वर्तमान में राष्ट्रीय स्तर पर स्वच्छता के प्रति सजगता बढ़ी है जिसका कुछ सार्थक परिणाम भी दिखाई पड़ने लगा है।

संदर्भ - संकेत

1. गांधी, म. क., मेरे सपनों का भारत, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2004, पृ. 15
2. यंग इंडिया, 21 फरवरी, 1929
3. गांधी, म.क., पूर्वोक्त, पृ. 17
4. यंग इंडिया, 10 सितम्बर, 1931
5. यंग इंडिया, 26 मार्च, 1931
6. हरिजन, 18 जनवरी, 1948
7. हरिजन सेवक, 28 जुलाई 1948
8. हरिजन, 11 अप्रैल 1936
9. हरिजन, 16 मई 1936
10. हरिजन सेवक, 2 अगस्त, 1942
11. उपरिवत
12. महात्मा : तेन्दुलकर (अंग्रेजी) खंड 4, पृ. 144
13. हरिजन सेवक, 10 नवम्बर, 1946
14. राममूर्ति, आचार्य, गांधी मार्ग, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली वर्ष 53, अंक 3 मई-जून 2011 पृ. 38-39
15. उपरिवत, पृ. 42
16. गांधी, मो. क., रचनात्मक कार्यक्रम उसका रहस्य और स्थान, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1946, पृ. 27
17. उपरिवत, पृ. 27-28
18. प्रभात, कुरुक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, नयी दिल्ली, वर्ष 59, अंक 03, जनवरी 2013, पृ. 4
19. उपरिवत, पृ. 4
20. उपरिवत, पृ. 6-7

संपर्क:

विभागाध्यक्ष

अहिंसा एवं शान्ति अध्ययन विभाग, म.गा.अ.हिं.

वि., गांधी हिल्स, वर्धा (महाराष्ट्र)

मो. - 09970251073

राष्ट्र-निर्माण की नैतिक दृष्टि

डॉ. अरुण कुमार भारद्वाज

‘पुरुषार्थ, त्याग और स्वराज’ पुस्तक शैतानी सभ्यता के प्रबल प्रतिरोधी अपराजेय गांधी की अपरिहार्यता को समर्पित है। गांधीजी आजीवन अन्तर प्रकृति का बाह्य प्रकृति से और बाह्य प्रकृति का अन्तर प्रकृति से सम्यक तादात्म्य बिठाकर, सतत सत्य का अनुसन्धान करते रहे। उनकी अन्तर्दृष्टि वर्तमान के भीतर सनातन मूल्य दृष्टि का सन्धान करती है।

पुस्तक- पुरुषार्थ, त्याग और स्वराज
लेखक- मो.क. गांधी
सम्पादन- डॉ. राजीव रंजन गिरि
प्रकाशक- गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट, नई दिल्ली-2
मूल्य- 50 रुपये

‘पुरुषार्थ, त्याग और स्वराज’ पुस्तक महात्मा गांधी के भाषणों और लेखों का सुन्दर संग्रह है। इसके संकलनकर्ता हैं डॉ. राजीव रंजन गिरि। इस संकलन में उनके 33 निबन्ध संकलित हैं। प्रथम निबन्ध ‘पुरुषार्थ से ही मिलेगा स्वराज’ 4 फरवरी 1916 को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में दिया गया भाषण है तो अन्तिम निबन्ध ‘विद्यार्थियों के लिए लज्जाजनक कार्य’ 31 दिसम्बर 1938 को ‘हरिजन’ में छपा लेख है। इस पुस्तक के ज्यादातर लेख भारत के युवा, विशेषकर उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों के लिए गांधीजी का उद्बोधन है। इस संकलन में 22 साल के अन्तराल को समेटा गया है। यानी दो महायुद्धों के बीच और गांधीजी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता आन्दोलन के उत्कर्ष काल को।

इस पुस्तक में तैंतीस में से बारह लेख गांधीजी के भाषण हैं। इन बारह भाषणों में नौ भाषण विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच का है— पुरुषार्थ से मिलेगा स्वराज (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), चरित्र और विद्या का संगम (गुजरात महाविद्यालय), स्वराज के लिए त्याग (मुजफ्फरपुर के विद्यार्थियों की सभा में), चरखा एक अद्वितीय उद्योग (राष्ट्रीय पाठशाला खासगाँव), प्राचीन संस्कृति का अभिप्राय (छात्र कांग्रेस जाफना), कात सको तो रहो (गुजरात विद्यापीठ), ईश्वर का सबसे अच्छा नाम दरिद्रनारायण (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), राष्ट्रीय विद्यालय का मतलब (काशी विद्यापीठ)। शेष तीन भाषणों में दो— ‘प्रार्थना के अर्थ की आवश्यकता’ और ‘काचो पावो खाओ अन्न’ साबरमती आश्रम की प्रार्थना सभा में और एक भाषण ‘खादी के बहाने कुछ बातें’ पटना में खादी प्रदर्शनी के मौके पर दिया गया था। बाकी इक्कीस लेख गुजराती के ‘नवजीवन’, अंग्रेजी के ‘यंग इंडिया’, ‘सर्चलाइट’ आदि अखबारों में छपे लेखों से लिए गए हैं।

इन सभी लेखों में वर्णित विषय हैं— पुरुषार्थ, स्वराज, असहयोग, अनुशासन, दृढ़ता, वीरता, चरित्र, विद्या, त्याग, खादी, चरखा, गीता, सत्य, निर्भयता, संस्कृति, स्वतन्त्रता, दरिद्रनारायण, विवाह, सादगी, बुद्धि, श्रद्धा, राष्ट्रीय विद्यालय, परामर्श, प्रार्थना, अहिंसा, लोकतन्त्र, उच्च शिक्षा जैसे दिलचस्प विषय हैं। इन विषयों पर बढ़ते हुए पाठक

को गांधीजी के विचार और संदेश के दर्शन होते हैं। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि इन लेखों में प्रतिक्षण सत्य नारायण के अनुसरण करने की तत्परता है। सत्य की खोज के क्रम में गांधीजी का आन्तरिक विकास भी होता चलता है। उन्होंने लिखा है कि “मैंने बहुत से विचारों को छोड़ा है और अनेक कई बातें रखा भी हूँ। उम्र में मैं भले बूढ़ा हो गया हूँ। लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है। या देह छूटने के बाद मेरा विकास बन्द हो जाएगा।”

यह पुस्तक शैतानी सभ्यता के प्रबल प्रतिरोधी अपराजेय गांधी की अपरिहार्यता को समर्पित है।

गांधीजी आजीवन अन्तर प्रकृति का बाह्य प्रकृति से और बाह्य प्रकृति का अन्तर प्रकृति से सम्यक तादात्म्य बिठाकर, सतत सत्य का अनुसन्धान करते रहे। वे मनुष्य के सत्कर्म- पुरुषार्थ, दृढ़ता, वीरता, त्याग, निर्भयता, सादगी, श्रद्धा, प्रार्थना, अहिंसा और शिक्षा आदि का प्रतिपादन युगानुकूल करते हैं। उनकी अन्तर्दृष्टि वर्तमान के भीतर सनातन मूल्य दृष्टि का सन्धान करती है। मौजूदा सभ्यता पर जैसे-जैसे संकट गहराता जाएगा, गांधी-दृष्टि अपरिहार्य होती चली जाएगी। ‘यंग इंडिया’ के 12 जनवरी 1928 वाले अंक में

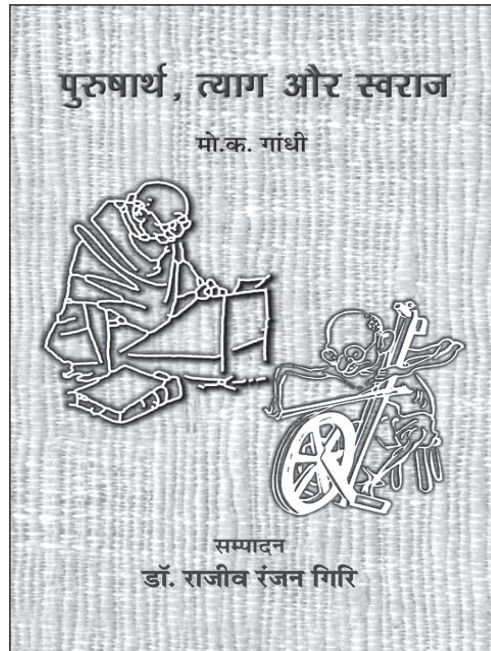
‘स्वतन्त्रता बनाम स्वराज’ नामक लेख गांधीजी का छपा। उसमें वे लिखते हैं “इंडिपेंडेस के लिए वे एक ऐसा सर्वमान्य भारतीय शब्द बतलाएँ जो जनता भी समझती हो... और ऐसा एक शब्द है स्वराज, जिसका राष्ट्र के नाम सबसे पहले पहला प्रयोग श्री दादाभाई नौरोजी ने किया था। यह शब्द स्वतन्त्रता से काफी कुछ अधिक का द्योतक है।” आखिर यह काफी कुछ क्या है? यही वह सनातन दृष्टि है जिसे बाद में चलकर इकबाल ने पकड़ा था- ‘कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।’ जैसे-जैसे शैतानी सभ्यता का संकट गहराएगा, ‘कुछ बात’ को याद दिलाने के लिए गांधी वाङ्मय की बार-बार आवश्यकता पड़ेगी। गांधीजी की अपरिहार्यता यही है।

गांधीजी ने ब्रिटिश हुकूमत को शैतानों का शासन कहा है। उन्होंने लिखा है “मैं अंग्रेजों के जुए से छूटना चाहता हूँ। इसके लिए मैं कोई भी कीमत चुका सकता हूँ, क्योंकि अंग्रेजों की शान्ति श्मशान की शान्ति है। एक सारे राष्ट्र के लिए जीवित होकर भी मुर्दे के समान जिन्दा रहने की स्थिति से कोई भी दूसरी स्थिति अच्छी रहेगी। शैतान के इस शासन ने इस सुन्दर देश की आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी दृष्टियों से प्रायः सत्यानाश ही कर दिया है।” गांधीजी के इसी संघर्ष का अध्ययन प्रख्यात बुद्धिजीवी आशीष नन्दी ने किया है, जिसका अर्थ इस संकलन के आरम्भ में डॉ. गिरि ने किया है।

“भारतीय जमीन पर औपनिवेशिक असर की मुखालफत के ऊपरी तौर पर सीधे और सरल प्रतीत होने वाले तौर तरीकों के अन्दरूनी पहलू पेचिदगियों से लबरेज थे। उस दौर में भारतीय समाज में मौजूद परम्परा प्रदत्त जड़ता और औपनिवेशिक जकड़बन्दी से संघर्ष करना फिर भी आसान था, बनिस्बत उन औपनिवेशिक मूल्यों के जो, इस संघर्ष के दौरान ही अन्तः सलिला की तरह हमारे भीतर पैठ बना रहे थे।” इस औपनिवेशिक फैलाव के दार्शनिक पक्ष की पहचान गांधीजी को थी। यह औपनिवेशिक संकल्पना मानव विरोधी थी इसलिए गांधीजी ने उसे शैतानी करार दिया है। 21वीं

सदी के दूसरे दशक में विकराल होती शैतानी सभ्यता जो भयावह होती जा रही है, यह संकलन गांधीजी के हवाले से आज के बुद्धिजीवियों का मार्ग प्रशस्त करेगी, ऐसी आशा है। इसलिए यह एक सदुपयोगी पुस्तक है।

26 नवम्बर 1927 को जाफना में छात्र कांग्रेस की सभा में गांधीजी ने ‘संस्कृति का अभिप्राय’ समझाते हुए कहा था कि संस्कृति प्राचीन हो या आधुनिक उसे तर्क और अनुभव की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए। प्राचीन हिन्दू संस्कृति में कुछ स्थायी महत्व की चीजें हैं जो समान रूप से ईसा, बुद्ध, मुहम्मद और जरथ्रुशत के उपदेशों में भी मिलती हैं। इसके पूर्व 25.08.1927 को ‘यंग इंडिया’ में ‘गीता’ के बारे में गांधीजी लिखते हैं कि “गीता के सन्देश सबके लिए है कि ‘प्रत्येक हिन्दू बालक-बालिका



को संस्कृत का ज्ञान होना चाहिए। परन्तु एक लम्बे असें तक लाखों व्यक्ति ऐसे रहेंगे, जिनको संस्कृत का कोई ज्ञान नहीं होगा। संस्कृत न जानने के कारण ही उनको 'गीता' के उपदेशों से वंचित रखना आत्मघात के समान होगा।" इसके पूर्व सन् 1920 में अहमदाबाद के विद्यापीठ में विद्यार्थियों के समक्ष अपने भाषण में उन्होंने 'गीता' की पंक्ति 'सा विद्या या विमुक्तये' की सरल व्याख्या प्रस्तुत की थी, जो इसी संकलन में संकलित है।

इस संकलन के एक चौथाई से अधिक लेख भाषण के तौर पर विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच के हैं। गांधीजी विद्यार्थियों को मौजूदा परिस्थिति का आईना मानते थे। वे मानते थे कि विद्यार्थियों में दम्भ, द्वेष, ढोंग नहीं होता है। वे जैसे हैं, वैसे ही अपने को दिखाते हैं।

25 सितम्बर 1929
को काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय में छात्रों
को सम्बोधित करते
हुए गांधीजी ने सफल
विश्वविद्यालय की
परिभाषा का उल्लेख
किया है। विश्वविद्यालय
की सफलता की माप इस
बात से की जा सकती है
कि विद्यार्थियों ने कहाँ
तक अपने आत्मबल का
गठन किया है, भारत
की उन्नति में कहाँ तक
हिस्सा लिया है, उनमें
धर्मभाव कहाँ तक बढ़ा
है।

अगर उनमें पुरुषार्थ नहीं, सत्य नहीं, ब्रह्मचर्य नहीं, अस्तेय नहीं, अपरिग्रह नहीं और अहिंसा नहीं तो उनका दोष नहीं है। दोष माँ-बाप का है। अध्यापकों का है। वे मानते थे कि हिन्दुस्तान का हर घर एक विद्यापीठ है। माँ-बाप उसके आचार्य हैं। माँ-बाप ने आचार्य का यह काम छोड़कर अपना धर्म छोड़ दिया है। विद्यार्थियों के बीच एक ऐसी ही सभा, मुजफ्फरपुर में 26 जनवरी 1927 को हुई थी।

जिसमें उन्होंने स्वराज के लिए त्याग के महत्व पर बल दिया था। मनुष्य को अपने आसपास के मनुष्यों के प्रति सहानुभूति अवश्य रखनी चाहिए। भाईचारे के भाव से ही स्वराज पाया जा सकता है। 10 नवम्बर 1927 को 'यंग इंडिया' में छपा जामिया मिलिया इस्लामिया के भाषण में गांधीजी कहते हैं कि "जब मनुष्य अपने हाथ आँखों और अपने दिमाग को गन्दा कर लेता है तो वह मनुष्य नहीं रह जाता बल्कि पशु बन जाता है।" इसी समय अंग्रेजी दैनिक 'सर्चलाइट' में छपे उनके भाषण भारत की मौजूदा हालत का चित्र खींचते प्रतीत होते हैं। सारे देश का वातावरण भ्रष्ट विचारों

से इतना भर गया है कि आप लोगों के लिए उसके प्रयास से बचे रहना लगभग असंभव है। पाठ्य-पुस्तकें, सिनेमा, रंगमंच सब अपवित्रता के प्रभाव से रोग फैला रहे हैं। यदि विद्यार्थियों को समय रहते चेतावनी न दी जाए और आवश्यक सावधानी न बरती गयी तो सारा देश नष्ट हो जाएगा। आखिर नष्ट होने से बचने और सुखद भविष्य लाने के लिए उपाय क्या है। सन् 1920 में 'यंग इंडिया' में छपे लेख 'अनुशासन की आवश्यकता' में गांधीजी ने मनुष्य के सुखद भविष्य के लिए आत्मसंयम, अनुशासन और बलिदान को आवश्यक बताया है।

23 सितम्बर 1929 के दीक्षान्त समारोह में गांधीजी ने विद्यार्थी और अध्यापक के व्यक्तित्व की चर्चा की है। वे कहते हैं कि छुट्टी के दिनों में विचारशील शिक्षक अक्सर विद्यार्थियों से पाठ याद कर लेने को कहते हैं। मेरी राय में यह बुरा चलन है। छुट्टी के दिनों में विद्यार्थियों का दिमाग पढ़ाई की आम दिनचर्या से मुक्त होना चाहिए और स्वावलम्बन तथा मौलिक विचार के लिए स्वतंत्र रहना चाहिए। 25 सितम्बर 1929 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में छात्रों को सम्बोधित करते हुए गांधीजी ने सफल विश्वविद्यालय की परिभाषा का उल्लेख किया है। विश्वविद्यालय की सफलता की माप इस बात से की जा सकती है कि विद्यार्थियों ने कहाँ तक अपने आत्मबल का गठन किया है, भारत की उन्नति में कहाँ तक हिस्सा लिया है, उनमें धर्मभाव कहाँ तक बढ़ा है। यह कसौटी आज के लिए भी उतनी ही समीचीन है। एक सवाल के जवाब में गांधीजी ने साफ किया है कि "मैं अपना अनुयायी किसी को नहीं मानता हूँ। मैं अपना अनुयायी स्वयं बनूँ, यही काफी है"। गांधीजी की यह उक्ति महात्मा बुद्ध का प्रसिद्ध कथन 'अप्प दीपो भव' के करीब है।

इस संकलन में गांधीजी के भाषण/लेख बिना किसी लागलपेट के रोचक और महापुरुषों की समर्थ वाणी की भाँति हैं, जिन्हें पढ़कर हम सब निरन्तर प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। इस संकलन का प्रत्येक बिन्दु भारतीय मनीषी की चिन्ताधारा को समेटता हुआ क्लासिकल की ऊँचाई तक जा पहुँचता है।

संपर्क:

असिस्टेंट प्रोफेसर,
श्री वेंकटेश्वर कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मो. - 9868249145

क्रान्ति-शान्ति का अपूर्व संगम

विनोबा भावे

छोटा था, तभी से मेरा ध्यान बंगाल और हिमालय की ओर खिंचा हुआ था। मैं हिमालय और बंगाल जाने के सपने सँजोया करता। बंगाल में 'वन्देमातरम्' की क्रान्ति की भावना मुझे खींचती थी तो दूसरी ओर हिमालय का ज्ञानयोग मुझे तानता। सन 1916 में जब मैं घर छोड़कर निकल पड़ा, तब मेरी एक तो हिमालय जाने की इच्छा थी, दूसरी बंगाल जाने की। हिमालय और बंगाल दोनों के रास्ते में काशी नगरी पड़ती थी। कर्म-संयोग से मैं वहाँ पहुँचा।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन के समय जो समारोह किया गया था, उसमें गांधीजी आये थे। उस समारम्भ में बड़े-बड़े विद्वान, राजा-महाराजा और वाइसराय की उपस्थिति में उन्होंने जो ओजस्वी भाषण किया, उसका विवरण अखबार में पढ़ा। उसका मुझ पर भी भारी असर हुआ। मुझे लगा, यह पुरुष ऐसा है, जो देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता और आध्यात्मिक विकास दोनों साथ-साथ साधना चाहता है। मुझे यही पसन्द था। मैंने पत्र लिखकर प्रश्न पूछे। जवाब मिलने पर, फिर से पूछा। उत्तर में गांधीजी ने आश्रम में दाखिल होने के बारे में नियमावली भेजी और लिखा कि 'पत्र-व्यवहार से विशेष कुछ नहीं होगा। तुम यहीं चले आओ।'

और, मेरे पैर महात्मा गांधी की तरफ मुड़े। यों देखें तो लगेगा कि मैं न तो हिमालय गया और न बंगाल पहुँचा। लेकिन अपने मन से दोनों जगह एक साथ पहुँच गया। गांधीजी के पास मुझे हिमालय की शान्ति भी मिली और बंगाल की क्रान्ति भी। वहाँ जो पाया, उसमें क्रान्ति और शान्ति दोनों का अपूर्व संगम हुआ था।

बापू के चरणों में

सन 1916 की 7 जून के दिन मैं कोचरब आश्रम में पहली बार गांधीजी से मिला। भगवान की अपार कृपा थी कि उसने मुझे उनके चरणों में स्थिर किया। अपना हृदय और जीवन जब देखता हूँ तो लगता है कि दोनों उनके चरणों में अत्यन्त स्थिर हैं। जो विचार, जो शिक्षण उन्होंने मुझे दिया, नहीं जानता कि उस पर कितना अमल कर सका हूँ। वे भी नहीं जानते और शायद आप भी न जान पाएँगे; लेकिन भगवान उसे जानेगा। उनके विचारों में से जितना मैं समझा और जितना मुझे रुचा, यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं कि उतने पर अमल करने की प्रतिक्षण सावधान रहकर मेरी कोशिश चल रही है। बल्कि उनके जीते-जी मैं जितना सावधान था; और ईश्वर-कृपा से बहुत सावधान था; उसकी अपेक्षा आज निःसन्देह अधिक सावधान हूँ। मैं निरन्तर अनुभव करता हूँ कि वे मेरे आगे-पीछे और ऊपर हैं।

शंकराचार्य का वाक्य मुझे हमेशा याद आता है। उन्होंने कहा है कि मनुष्य के परम भाग्य तीन होते हैं : एक मानव-देह की प्राप्ति, दूसरा मुमुक्षुत्व-मुक्ति की छटपटाहट और तीसरा किसी महापुरुष के आश्रय का लाभ।

मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः।

शंकराचार्य के इस वाक्य पर विचार करता हूँ तो मेरा हृदय आनन्द से उछलने लगता है। मैं परम धन्य हूँ कि मानव-देह मिली, मुक्ति की धुन लगी और महापुरुष का सत्संग मिला। सन्त-महात्माओं की वाणी पुस्तकों में पढ़ना एक बात है और उसका प्रत्यक्ष सत्संग करना, उनके मार्गदर्शन में काम करना, प्रत्यक्ष उनका जीवन देखना अलग बात है। मुझे यह भाग्य प्राप्त हुआ, इससे मैं धन्य हो गया।

अन्तर्बाह्य एकता की अवस्था

गांधीजी ने मेरी परीक्षा, कसौटी की होगी या नहीं, मैं नहीं जानता। लेकिन अपनी बुद्धि से मैंने उनकी बहुत परीक्षा कर ली थी, और यदि इस परीक्षा में वे कम उतरते तो उनके पास मैं टिक नहीं पाता। मेरी परीक्षा करके उन्होंने मुझमें चाहे जितनी खामियाँ देखी होंगी या देखते होंगे, तो भी वे मुझे अपने साथ रखते थे। किन्तु अगर मुझे उनकी सत्यनिष्ठा में कुछ भी कमी, न्यूनता या खामी दिखती, तो मैं उनके पास टिक नहीं पाता।

बापू हमेशा कहते थे कि मैं अपूर्ण हूँ, अधूरा हूँ। उनकी बात सच थी। झूठ बोलना वे जानते नहीं थे। वे सत्यनिष्ठ थे। मैंने ऐसे बहुत से महापुरुष देखे हैं, जिन्हें अपने बारे में ऐसा भास होता है कि वे मुक्त पुरुष हैं, पूर्ण-पुरुष हैं। फिर भी ऐसे किसी का मुझे आकर्षण नहीं हुआ। लेकिन सदैव अपने को अपूर्ण मानने वाले बापू का ही मुझे अनोखा आकर्षण रहा। मुझ पर जितना असर बापू का पड़ा, उतना पूर्णता का दावा करने वाले दूसरे सज्जनों का नहीं पड़ा।

मैं बापू से मिला और उन पर मुग्ध हो गया, सो उनकी अन्तर्बाह्य एकता की अवस्था के कारण। फिर, कर्मयोग की दीक्षा मुझे बापू से मिली। गीता में तो यह कहा ही गया है, लेकिन उसका साक्षात्कार हुआ बापू के जीवन में। गीता के कर्मयोग का प्रत्यक्ष आचरण मैंने बापू में देखा। गीता में स्थितप्रज्ञ के लक्षण आते हैं। यह वर्णन जिस पर लागू हो, ऐसा स्थितप्रज्ञ देहधारी खोजने पर बड़े भाग्य से ही मिलेगा। लेकिन इन लक्षणों के बहुत निकट पहुँचे महापुरुष को मैंने अपनी आँखों से देखा।

गाय जैसे वत्सल

ऐसे एक महापुरुष के साथ काम करने का और उनके आश्रय में जिन्दगी बिताने का परम सौभाग्य मुझे हासिल हुआ है। बहुत से लोगों का ऐसा ख्याल है कि जो बड़े लोगों की छाया में रहते हैं, उनका पूरा विकास नहीं होता। इसकी मिसाल के तौर पर कहा जाता है कि बड़े पेड़ की छाया में जो छोटे-छोटे पौधे होते हैं, उनका पोषण नहीं होता, वे बढ़ नहीं पाते। क्योंकि बड़ा पेड़ छोटे पौधों का तमाम पोषण खुद सोख लेता है, जो उन पौधों के लिए जरूरी है।

लेकिन यह मिसाल महापुरुषों पर लागू नहीं होती। महापुरुषों के लिए दूसरी मिसाल है। महापुरुषों के

आश्रय में जो रहते हैं, वे वैसे होते हैं, जैसे गाय के गोटे में बछड़े। गाय अपना दूध बछड़ों के लिए देती है। बड़े पेड़ छोटे पौधों का पोषण खुद चूस लेते हैं। महापुरुष तो गाय की तरह वत्सल होते हैं। वह खुद घास आदि खाकर बालकों को मधुर दूध पिलाती है। उसके आश्रय में बालक पोसाते हैं, बढ़ते हैं। महात्मा गांधी के लिए यह अनुभव उन सब लोगों को आया, जिन्होंने उनका आश्रय लिया। उनके आश्रय में जो भी आये, वे अगर बुरे भी थे तो अच्छे बने। छोटे थे तो बड़े बने। कायर थे तो निर्भय बने। उन्होंने हजारों का महत्त्व बढ़ाया और तिस पर भी अपने को सबसे छोटा समझते थे। मैं अपना जीवन धन्य समझता हूँ कि मुझे उनका आश्रय मिला।

सन 1916 में जब मैं उनके पास पहुँचा, तब इक्कीस बरस का छोकरा था। एक जिज्ञासु बालक-वृत्ति लेकर उनके पास गया था। मेरे सारे मित्र जानते हैं कि जिसे 'सभ्यता', 'शिष्टता' कहते हैं, मुझमें बहुत ही कम थी। मैं तो स्वभाव से जंगली जानवर जैसा रहा हूँ। मेरे भीतर के क्रोध की ज्वालामुखी और दूसरे अनेक वासनाओं के बड़बानल का शमन करने वाले तो बापू ही थे। मुझ पर निरन्तर उनके आशीर्वाद बरसे हैं। मैं उनका एक पालतू जंगली प्राणी हूँ। आज मैं जो कुछ हूँ, वह सारा बापू की आशीष का चमत्कार है। उन्होंने मुझ जैसे असभ्य आदमी को सेवक बना दिया।

दृष्टिदायी मातृस्थान

मैं बापू के आश्रम आया और आश्रम का जो कुछ जीवनस्वरूप अपनी दृष्टि से देखा, उससे मुझे बहुत कुछ मिला। परिणामस्वरूप मुझे अनुभव हुआ कि जीवन एकरस और अखंड है। बापू कभी अपने को गुरु के तौर पर नहीं मानते थे और अपने को भी किसी के शिष्य के तौर पर नहीं मानते थे। इसी तरह मैं भी न किसी का गुरु हूँ और न किसी का शिष्य; जब कि मैं गुरु के महत्त्व को बहुत मानता हूँ। गुरु ऐसे हो सकते हैं, जो केवल स्पर्श से, दर्शन से अथवा वाणी-मात्र से शिष्य का उद्धार कर सकें। इतना ही नहीं, यह भी मानता हूँ कि केवल संकल्प से भी शिष्य का उद्धार करने वाले पूर्णात्मा गुरु हो सकते हैं फिर भी यह मैं कल्पना में ही मानता हूँ। वस्तुस्थिति में ऐसे किसी गुरु को मैं नहीं जानता। लेकिन गुरुत्व की यह भाषा छोड़, मैं इतना ही कहूँगा कि मुझे बापू के आश्रय में जो कुछ मिला; वही अब तक मेरे

काम आ रहा है। मेरी जो भूदान, ग्रामदान-यात्रा चली, वह सब वहीं की साधना की आभारी है। उसके पहले मैं जो साधना करता था; वह केवल भावना-रूप थी। लेकिन उसके बाद बापू के आश्रय की साधना चली और आश्रय में आने के बाद मुझे आँख ही मिल गयी। यह सारा उपकार बापू का है। बापू का आश्रय मेरे लिए दृष्टिदायी मातृस्थान है।

अहिंसा का गहरा मार्ग

बापू के पास जाने के बाद मेरे 32 वर्ष व्यक्तिगत साधना में बीते। तब मेरा अपना निरन्तर जो चिन्तन-मनन चलता; वह सारा आध्यात्मिक था, जब कि वह साधना प्रवृत्ति-मुक्त नहीं थी। राजनीति आदि जो कुछ चलता, वह सब देखता रहता। समाज-निरीक्षण में बिल्कुल अप-टु-डेट रहता। बापू जो कुछ लिखते या कहते, वह मेरे मार्गदर्शक के रूप में होता। उनके विचारों का मैं बहुत ही सूक्ष्म-भाव से अभ्यास करता और उसमें से कुछ मिलता; उस पर अमल करने का यथाशक्ति प्रयत्न करता। यों करते-करते बापू का दिखाया हुआ अहिंसा का गहरा मार्ग हमारे हाथ लगा।

भागवत-धर्म के बारे में एक बहुत सुन्दर श्लोक है। बापू ने जो अहिंसा का रास्ता खोज निकाला, उस पर वह पूरी तरह लागू होता है। श्लोक में कहा गया है :

यमास्थाय नरो राजन, न प्रमाद्येत कर्हिचित्।

धावान्निमील्य वा नेत्रे न स्वलेन्न पतेदिह॥

भागवत-धर्म ऐसा है कि यदि उस पर आस्था रखकर मनुष्य चले, तो कभी भी उसके हाथों प्रमाद नहीं होगा, अर्थात् भूल, गलती, दोष नहीं होगा। इसलिए वह उस पर आँख मूँदकर चले या दौड़े, तो भी किसी प्रकार उसका पतन होने वाला ही नहीं। बापू से इतना सुन्दर, सरल मार्ग हमें मिला है। हम सर्वोदय-समाज कायम करने की आशा सँजोते हों, तो इस मार्ग पर चलें।

एक विरल महापुरुष

परमेश्वर की हिन्दुस्तान पर बहुत कृपा रही है। अनादिकाल से लेकर आज तक अनेक महापुरुष यहाँ अवतरित हुए हैं और यहाँ के जीवन को कमोबेश समृद्ध करते गये हैं। इन महापुरुषों की अन्तिम कड़ी के रूप में और भविष्य में आने वाले महापुरुषों में प्रथम गिने जाने वाले गांधीजी थे। भूतकाल में महापुरुषों ने हमें जो कुछ दिया, उसका सार हमने गांधीजी में पाया और भविष्य

में जो असंख्य महापुरुष परमेश्वर भेजने वाला है, उनके बीज भी गांधीजी में मिले। इस तरह एक सन्धिकाल में वे आये और उनके जीवन में भूत और भविष्य की कड़ी जुड़ गयी। प्रत्येक महापुरुष के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। हर एक की अपनी-अपनी विशेषता तो होती ही है, लेकिन महापुरुषों में भी पुरातन परम्परा का फल और नूतन परम्परा का बीज जिनके जीवन में एकत्र हो गया हो, ऐसे तो विरले ही होते हैं। ऐसे विरल महापुरुषों में से गांधीजी एक थे।

विचार-प्रवर्तक युग-पुरुष

गांधीजी एक सत्पुरुष थे, यह तो सभी मानते हैं। लेकिन सत्पुरुष होने के अलावा वे एक नये विचार के प्रवर्तक भी थे। उन्होंने एक नया जीवन-विचार दिया। ऐसा नया विचार सभी सत्पुरुषों द्वारा प्रकट नहीं होता। जिस सत्पुरुष का गठन एक खास परिस्थिति में होता है, उसके मन में नया विचार पैदा होता है। हृदय तो सभी सत्पुरुषों का एक-सा होता है, लेकिन हर एक की बुद्धि और प्रतिभा अलग-अलग होती है। जिसकी प्रतिभा की जिस काल में अधिक आवश्यकता होती है, वह सत्पुरुष उस काल का युग-प्रवर्तक बन जाता है। गांधीजी ऐसे ही युग-प्रवर्तक सत्पुरुष थे।

सामान्य धर्म-प्रचार और क्रान्ति दोनों अलग-अलग बातें हैं। सामान्य धर्म का बोध तो ऋषि और सन्त हमेशा देते रहते हैं, लेकिन जब युग की माँग और सन्त के उपदेश का संयोग होता है, तब 'क्रान्ति' होती है। सर्व-सामान्य धर्म का प्रचार एक बात है और जमाने को किस बात की जरूरत है, यह परखकर उसके साथ धर्म-विचार जोड़ देना दूसरी बात। अन्दर का धर्म-विचार का बल और बाह्य परिस्थिति का बल, दोनों को जोड़ दिखाता है, वह केवल 'धर्म-पुरुष' या सत्पुरुष नहीं रह जाता, बल्कि युग-पुरुष बन जाता है। गांधीजी ऐसे ही युग-पुरुष थे।

स्मृतिकार की कोटि के समाज-शास्त्रज्ञ

गांधीजी एक ऐसे व्यापक विचारक हो गये हैं कि वे लगभग स्मृतिकारों की कोटि में आते हैं। किसी ने इनकी तुलना ईसा के साथ की है, तो किसी ने तिलक के साथ। मेरे मत में इनकी तुलना स्मृतिकारों के साथ हो सकती है जिनका व्यापक विचार जीवन के सारे पहलुओं को स्पर्श करता है; उस मनु और याज्ञवल्क्य के साथ उनको रख सकते हैं। वे एक समाज-शास्त्रज्ञ थे।

फिर भी मनु और गांधीजी में अन्तर है। मनु चिन्तन-प्रधान थे, तो गांधीजी सेवा-प्रधान। गांधीजी 'एक्टिविस्ट' कर्मप्रधान थे। गांधीजी ने जो प्रभाव डाला, वह प्रत्यक्ष है और परोक्ष भी। उनकी खूबी यह थी कि वे अपने ग्रन्थों की अपेक्षा बहुत बड़े थे, जब कि जीवन की दृष्टि से शेक्सपियर और मिल्टन अपने ग्रन्थों की अपेक्षा छोटे थे। गांधीजी का जीवन खूब ऊँचा, भला और उन्नत था। 'एक्सप्लेन' विचार प्रकट करने में वे कमजोर थे। इस कारण उनके ग्रन्थों की अपेक्षा उनके जीवन में अधिक प्रतिभा थी।

महापुरुषों की अग्रगामी प्रतिभा

शंकराचार्य महान पुरुष हो गये। रामकृष्ण परमहंस भी महान थे। इन लोगों ने भी जीवन के अनेक क्षेत्रों में कुछ-न-कुछ सिखाया और लोगों के जीवन में परिवर्तन लाया। लेकिन वे सूर्यनारायण की तरह दूर रहकर प्रकाश देते थे। हमें सूर्य की किरणों से स्वास्थ्य मिलता है। लेकिन शरीर के किसी भाग में सूजन आ जाए और सेंक करना हो तो उससे लाभ नहीं होगा। उसके लिए तो अग्नि ही चाहिए, जो नजदीक आकर दास बनकर हमारी सेवा करती है। सूर्यनारायण आपका गुरु बनता है, दास नहीं। वह प्रकाश देगा और उस प्रकाश में आपको अपनी बुद्धि के अनुसार काम करना है। वह आपका मार्गदर्शक बनता है, सेवक नहीं। फिर भी सूर्यनारायण न होता, तो अग्नि में जो शक्ति है वह भी न होती, यह उतना ही सच है।

आध्यात्मिक प्रतिभा अन्दर से ही उगती है, इसलिए एक महापुरुष की तुलना दूसरे महापुरुष के साथ नहीं हो सकती। कौन ऊँचा और कौन नीचा, ऐसा विचार करने में कोई अर्थ नहीं। प्रत्येक की अपनी अलग प्रतिभा होती है। हम तो केवल महापुरुषों के भिन्न-भिन्न प्रकारों के बारे में बात ही कर सकते हैं।

करुणा और वात्सल्य से प्रेरित

कितने ही महापुरुष करुणावान और वत्सल होते हैं। उनमें ज्ञान छिपा रहता है और करुणा प्रकट होती रहती है। गांधीजी इसी प्रकार के महापुरुष थे। करुणा और वात्सल्य से प्रेरित होकर वे अन्त तक लोगों का काम करते रहे। प्रत्येक उन्हें अपना आदमी मानता, क्योंकि वे सामान्य आदमी के साथ उसकी भूमिका पर रहकर बात करते थे। किसी का पेट दुखता तो गांधीजी इलाज बताते। पति-पत्नी के बीच अनबन हो गयी, तो वे गांधीजी के

पास सलाह लेने पहुँच जाते। अपने सभी महत्त्व के कामों के बीच भी समय निकाल, वे उन सब विषयों में रस लेते और प्रत्येक को समुचित सलाह देते थे। माँ की तरह वे बातचीत करते, विचार करते, इसीलिए लोग उनके पास बेधड़क दौड़े जाते। ऐसी उनकी करुणा प्रकट रूप में विलसती थी।

बालकों को वे अपने जैसे बालक ही लगते। बहनों को लगता कि वे हमारी एक बहन ही हैं। इस तरह बहनें खुले मन से उनसे बातें कर पातीं। हर एक को यही लगता कि वे अपने परिवार के आदमी हैं।

हम सब निकट के लोग गांधीजी को 'बापू' नाम से पुकारते। बाद में तो सारा देश ही उन्हें 'बापू' कहने लगा और अन्त में इन्हें 'राष्ट्रपिता' कहा। लेकिन मैं जब भी बापू के बारे में सोचता हूँ, मुझे लगता है कि वे पिता की अपेक्षा माता ही विशेष थे। हमारे यहाँ कहा है : सहस्रन्तु पितृन् माता-गौरवेणातिरिच्यते; गौरव में हजार पिता की अपेक्षा एक माता श्रेष्ठ है। बापू में पितृत्व की तरह मातृत्व भी प्रकट होता था। हम जब भी उनका स्मरण करते, उनके दूसरे अनेक गुणों की अपेक्षा उनका वात्सल्य ही सबसे अधिक याद आता है। उनके वात्सल्य का अनुभव उनके समीप रहने वालों को भी हुआ और दूर रहने वालों को भी हुआ। उनके सारे गुणों में उनकी 'वत्सलता' और 'करुणा' मुख्य थी।

इस तरह हमने बापू में पुरातन परम्परा के अनुरूप और नूतन परम्परा के बीजरूप महापुरुष के, एक विचार-प्रवर्तक युगपुरुष के, एक स्मृतिकार कोटि के समाज-शास्त्र के, एक करुणावान वत्सल माता-समान महापुरुष के दर्शन किये। ऐसे महापुरुष के सान्निध्य में हमें रहने को मिला; यह हमारा परम सद्भाग्य है।

रूप से नाम बड़ा

हमारे देश में विभूति-पूजा चलती है। बात-बात में महापुरुष को दिव्य स्वरूप में देखने की हमारी आदत ही पड़ गयी है। गांधीजी का भी ऐसा ही दैवीकरण करने की कोशिश हो रही है। बहुत से लोग उनका इस तरह गुणगान करते हैं, मानो वे भगवान ही थे। उनको राम और कृष्ण की कोटि में डाल देते हैं। यह ठीक नहीं है।

मानव-देह में एक आकांक्षा रही है कि भगवान के गुणों का साक्षात्कार इस शरीर में हो। इसलिए कोई महापुरुष अवतारस्वरूप हुआ तथा पूर्ण ब्रह्म और साक्षात्

ब्रह्म मानवरूपधारी बना, ऐसा मानना हमारे लिए उपासना का एक आधार बनता है। इस दृष्टि से उसका मूल्य भी है। लेकिन ऐसा आधार तो हमें राम और कृष्ण में कहीं मिल चुका है। अब तीसरे की जरूरत ही क्या है?

अब दूसरों को राम और कृष्ण की कोटि में रखने में कोई लाभ नहीं, हानि ही होगी। नये-नये मनुष्यों को अतिमानव बनाने का नये सिरे से प्रयत्न होगा। ऐसा होने पर वे सब पुराणकाल से अनेक कवि-कल्पनाओं से समृद्ध राम और कृष्ण के चरित्रों की कोटि में टिकने योग्य न बन पाएँगे। उनकी तुलना में ये फीके पड़ेंगे। सिवाय इसके, विज्ञान के जमाने में ऐसा प्रयत्न हास्यास्पद भी होगा। 'भारत को स्वतन्त्र करने के लिए भगवान का जन्म हुआ' ऐसा कहकर हम गांधीजी का चरित्र लिखने बैठेंगे, तो यह भागवत की हास्यास्पद नकल जैसी बात होगी। भागवत जैसे निरन्तर पढ़ा जाता है, वैसे यह निरन्तर नहीं पढ़ा जाएगा; बल्कि वह हास्यरस ही पैदा बल्कि वह हास्यरस ही पैदा करेगा; 'क्विगज़ोटिक' शेखचिल्लीपन हो जाएगा।

उन्हें मानव ही रहने दें

इसलिए गांधीजी के प्रति हम ऐसी मूढ़ भक्ति न रखें। वे एक मानव थे और मानव ही रहने चाहिए। उन्हें वैसा रहने देने में हमारा ही लाभ है। ऐसा करने से एक सज्जन का चित्र हमारे सामने रहेगा और आज जिसकी खूब आवश्यकता है, ऐसा नैतिक आदर्श संसार को मिलेगा। इसके बदले उन्हें देव बना देंगे, तो उससे देवों का तो कोई फायदा होने वाला नहीं, बल्कि हम मानवता का एक आदर्श खो बैठेंगे। भक्तिभाव के लिए हमारे पास चाहे जितनी सामग्री पड़ी है। उसके लिए नये देव की नहीं, जीवन-शुद्धि के एक पवित्र दृष्टान्त की जरूरत है। नीति के पुराने दृष्टान्त नये जितना काम नहीं देते। बापू के रूप में हमें ऐसा नया दृष्टान्त मिला है। उन्हें देव बना देंगे तो हम घाटे में रहेंगे और लाभ कुछ नहीं होगा। अनेक सम्प्रदायों के बीच एक सम्प्रदाय और पैदा करेंगे और उससे हम क्या पाएँगे? इससे बेहतर है कि हम गांधीजी को भगवान की कोटि में न बैठाएँ। उन्हें देव बना देने के बदले आदर्श मानव ही रहने दें।

बड़ी खुशी की बात है कि गांधीजी जैसे इतने बड़े महापुरुष हमारे लिए हो गये। फिर भी भगवान की कृपा है कि वे अलौकिक पुरुष पैदा नहीं हुए। शुकदेव जन्म से ही ज्ञानी थे। कपिल महामुनि जन्मते ही माँ

को उपदेश देने लगे। शंकराचार्य आठ वर्ष की उम्र में वेदाभ्यास पूरा करके भाष्य लिखने लगे। लेकिन गांधीजी ऐसी कोटि में पैदा नहीं हुए। वे सामान्य मानव थे और इस जीवन में उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया, अपनी प्रत्यक्ष साधना और सत्यनिष्ठा से किया। इसलिए उनका जीवन हमारे लिए अधिक अनुकूल पड़ेगा, अनुसरण करने योग्य ठहरेगा।

एक बार एक भाई ने मुझसे पूछा कि उन्हें 'गांधी' कहा जाए या 'गांधीजी'? मैंने कहा : आप यदि उन्हें व्यक्ति मानते हों, एक पुण्य पुरुष के रूप में देखते हों, तो 'गांधीजी' कहिए। लेकिन यदि उन्हें विचार मानते हों, तो 'गांधी' कहना चाहिए। तब तो 'गांधी' इस तरह बोलना पड़ेगा। गांधीजी मेरे लिए आज एक व्यक्ति नहीं, विचार हैं।

पल-पल विकसित होते रहे

यह भलीभाँति समझ लेने की बात है। अगर हम इसे नहीं समझेंगे, तो गांधी को जरा भी नहीं समझ सकेंगे। वे तो रोज-रोज बदलते, पल-पल विकसित होते रहे हैं। यह आदमी ऐसा नहीं था कि पुरानी किताब के संस्करण ही निकालता रहे। कोई नहीं कह सकता कि आज वे होते तो कैसा मोड़ लेते। उन्होंने अमुक समय अमुक बात कही थी, इसलिए आज भी वैसे काम को आशीर्वाद ही देंगे, ऐसा अनुमान लगाना अपने मतलब की बात होगी। मैं कहना चाहता हूँ कि ऐसा अनुमान लगाने का किसी को हक नहीं। लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति-लोकोत्तर पुरुष के चित्त की थाह कौन पा सकता है? इसलिए गांधीजी आज होते तो क्या करते और क्या न करते, इस तरह नहीं सोचना चाहिए।

यदि हम यह नहीं समझते, तो हम गांधीजी के साथ बहुत अन्याय करेंगे। उनसे हमें एक विचार मिल गया है, ऐसा समझकर अब हमें स्वतन्त्र चिन्तन करना है। यदि हम उनके विचार को उनके शब्दों और उनके कार्यों से सीमित कर डालेंगे, तो उनके साथ अन्याय कर बैठेंगे। गुजरात में जिसे 'वेदिया' कहते हैं, वैसे 'वेदिया' अर्थात् शब्द को पकड़ कर रखने वाले हम बन जाएँगे, तो गांधीजी के साथ अन्याय करेंगे।

स्थूल छोड़ो, सूक्ष्म पकड़ो

हमें महापुरुषों के विचार ही ग्रहण करने चाहिए, उनके स्थूल जीवन को न पकड़ रखें। ऐसा एक शास्त्र-वचन भी है। उसमें कहा गया है कि हमें

महापुरुषों के वचनों का चिन्तन करना चाहिए, उनके स्थूल चरित्र का नहीं। इतना ही नहीं, वचनों का भी जो उत्तम-से-उत्तम अर्थ हो सके, वही ग्रहण करें। इससे सफ़ है कि वचनों का जो कुछ सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और शुद्ध-से-शुद्ध अर्थ निकलता हो, वही ग्रहण करना चाहिए। आज विज्ञान-युग में पुराणकाल का मनु और उनका यह पुराना मार्क्स नहीं चलेगा। मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि गांधीजी आज ज्यों-का-त्यों नहीं चलेगा।

तब यह प्रश्न खड़ा होगा कि क्या आप गांधीजी से भी आगे बढ़ गये? तो हममें अत्यन्त नम्रतापूर्वक यह कहने का साहस होना चाहिए कि 'हम गांधीजी के जमाने से आगे ही हैं।' इसमें गांधीजी से आगे बढ़ जाने का सवाल ही नहीं और न ऐसा करने की जरूरत ही है। बढ़े या घटे, यह तो भगवान तौलेगा। यह हमारे हाथ की बात नहीं। हमें उनसे बढ़ने की जरूरत नहीं। लेकिन हमारा जमाना उनके जमाने से आगे है। हमारे सामने नये दर्शन (क्षितिज) खड़े हो गये हैं। हमें यह समझ लेना ही होगा। न समझेंगे तो जो काम करने की जवाबदारी हम-आप जैसे गांधी-विचार मानने वालों पर आ पड़ी है, उसे हम निभा नहीं पाएँगे।

एकदम दगाबाज!

गांधीजी स्वयं तो इतने संवेदनशील थे कि नित्य-निरन्तर परिस्थिति के अनुसार झट बदलते जाते थे। मैंने एक बार उनके बारे में एक शब्द कहा, जो कितनों को खटक गया; 'दगाबाज!' एकनाथ का एक पद है। उसमें उन्होंने सन्तों को 'दगाबाज' कहा है। कहते हैं : "सन्तो, आप लोग कितने दगाबाज हैं! आज भगवान का एक तरह से वर्णन करते हैं, कल दूसरी तरह।" इसी तरह गांधीजी के बारे में भी यही कहना पड़ेगा कि यह शख्स बिल्कुल दगाबाज था। कभी भी एक शब्द से चिपका नहीं रहता था। किसी को भी ऐसा भरोसा नहीं था कि आज गांधीजी ने यह रास्ता पकड़ा है, तो कल कौन-सा पकड़ेंगे। क्योंकि वे विकासशील पुरुष थे। उनका मन सदैव सत्य के शोध के विचार में ही रहता था, अपनी बात का छोर किस तरह पकड़ रखा जाए, इसमें पियरोया नहीं रहता था। तो, मुझे कहना यह है कि गांधीजी सतत परिवर्तनशील थे। इसलिए हमें आज की परिस्थिति के अनुसार स्वतन्त्र चिन्तन करते रहना चाहिए।

और ईश्वर की लीला देखिए न! जिस समय गांधीजी की अत्यन्त जरूरत थी, अधिक-से-अधिक अनिवार्यता थी, उसी समय उसने उन्हें हम लोगों के बीच से उठा लिया। इसका मतलब क्या है? यही कि 'आप लोग जरा निरपेक्ष रूप में विचारा करें।'

पैगम्बर गया, अल्लाह कायम है

मुझे याद आती है मुहम्मद पैगम्बर की मृत्यु की। उनकी मृत्यु हो गयी, लेकिन लोग इसे मानने को तैयार नहीं थे। पैगम्बर और वह कहीं मर सकता है? कौन मानता? आश्चर्य जैसी बात है कि पैगम्बर के मरने के बाद हमारा कोई कर्तव्य हुआ करता है और उसके लिए लोगों को तैयार होना चाहिए। वे यह मानने को ही तैयार नहीं थे। कोई क्या करे? आखिर अबु बकर मसजिद पर खड़ा हुआ। लोगों को इस पर बड़ी श्रद्धा थी। वह सदा सत्य बोलता। उसने मसजिद पर से लोगों से कहा : 'पैगम्बर गया, अल्लाह कायम है।' अबु बकर ने जब यह कहा, तब कहीं सबने माना कि सचमुच पैगम्बर चले गये।

लगभग हर एक महापुरुष के अनुयायियों के बारे में ऐसा ही हुआ करता है। महापुरुष के स्थूल चरित्र के साथ वे इतने अधिक उलझे रहते हैं कि उसकी वजह से निरपेक्ष होकर तत्काल सोच ही नहीं पाते। लेकिन आखिर तो व्यक्ति-निरपेक्ष चिन्तन तो चलना ही चाहिए। रूप की अपेक्षा नाम ऊँचा है। रूप कुछ दिनों का होता है, पर नाम सनातन है। रूप यानी व्यक्ति और नाम यानी विचार। व्यक्ति भी ऊँचा होता है, तो उसमें रहने वाले किसी खास विचार के कारण। मतलब यह कि वह व्यक्ति उस विचार को व्यक्त करने में निमित्त बनता है। फिर भी शक्ति तो विचार में ही रहती है। हमें इसका अनुभव भी होता है। जैसे व्यक्ति का अस्तित्व कुछ अंशों में विचार के लिए मदद रूप होता है, वैसे ही उससे विचार को हानि भी पहुँचती है। व्यक्ति के चले जाने के साथ शुद्ध विचार शेष रह जाता है।

इसीलिए तुलसीदास जी ने कहा है कि 'राम की अपेक्षा नाम बड़ा नाम है।' मतलब यह कि एक व्यक्ति रामचन्द्र जैसा हो, तो वह जितना कर सकता है, उससे कहीं अधिक करने की शक्ति उसके नाम में है। राम ने जिन पतितों को तारा, उनकी संख्या हम गिन सकते

हैं। लेकिन उनके नाम ने जितनों को तारा और आगे तारेगा, उनकी संख्या कभी नहीं गिनी जा सकती। रामजी ने तो अयोध्या नगरी को स्वर्ग बनाया, लेकिन राम-नाम ने तो प्रत्येक गाँव को अयोध्या बना दिया। गाँव-गाँव में राम-कथा चलती है : गाँव-गाँव अस होइ अनन्दा। राम-राज्य का चित्र तुलसीदास ने खींचा है:

बयरु न कर काहू सन कोई।

राम प्रताप विषमता खोई॥

देहधारी राम कहाँ तक पहुँचते, जबकि उनका नाम सर्वत्र फैल गया!

शब्द अविनाशी है

सन्त अपने जीवन-काल में जितने समर्थ होते हैं, उसकी अपेक्षा अपना जीवन पूरा करने के बाद वे कितने ही अधिक समर्थ बनते हैं। कारण, उनका स्थूल रूप नष्ट हो जाता है, उसके साथ उनकी कमियाँ भी नष्ट हो जाती हैं। फिर सम्पूर्ण शुद्ध, दिव्य अंश ही शेष रहता है। एक मनुष्य के व्यक्त किये हुए विचार उसके नष्ट हो जाने पर नष्ट नहीं हो जाते। बल्कि उन विचारों का प्रकाश अधिक उज्ज्वल हो उठता है।

देह छूट जाने पर महापुरुष अपने जीवन-काल की अपेक्षा अधिक काम करते हैं। महापुरुष देह-मुक्त बनते हैं, तो उनके विचार वातावरण में फैल जाते और सबको प्रेरणा देते रहते हैं। इन महात्माओं की आवाज सुनने के लिए जिनके हृदय में रेडियो-सेट होता है, वे वातावरण से उनकी आवाज सुन सकते हैं। हवा में शब्द है। शब्दो शब्दो नित्यः; शास्त्रकारों ने कहा है कि शब्द अविनाशी है, नित्य है। वह वातावरण में प्रसारित होता है। हमारे पास रेडियो हो, तो उसे सरलतापूर्वक सुन सकते हैं। जिसके अन्तर में उन विचारों की लहरों को पकड़ने का साधन हो, वे उसे पकड़ लेते हैं। मनुष्य को इसी तरह प्रेरणा मिलती रहती है। बापू भी इसीलिए मर गये कि मेरे और आप सबके शरीरों में प्रवेश करने की सुविधा मिले। उनका नाम, उनका शब्द, उनके विचार सतत हम सबको प्रेरणा देते रहते हैं।

सच्चा स्मारक

बापू गये और तुरत ही उनके स्मारक की बातें शुरू हो गयीं। लोग तरह-तरह के स्मारक बनाने के बारे में विचार करने लगे। एक भाई ने मुझसे पूछा : “गांधीजी के स्मारक के रूप में अशोक-स्तम्भ जैसे स्तम्भ खड़े

किये गये होते तो कैसा रहता?” मैंने कहा : “सामान्य जनता से जाकर पूछिए कि उसे अशोक-स्तम्भों की कितनी जानकारी है? सामान्य मनुष्य तो शायद अशोक का नाम भी न जानता होगा। इतिहास में कितने ही राजा हो गये। उनमें एक अशोक भी हुआ। अलबत्ता, वह एक महान और दयालु राजा था। लेकिन जनता उसे कहाँ जानती है? वह तो कबीर, नानक, तुलसीदास, मीरा को जानती है। गांधीजी का भी जनता के हृदय में ऐसा ही स्थान है। उनके स्मारक में स्तम्भों की क्या दरकार है? उनके तो विचार लेकर हमें जनता में पहुँचना चाहिए।”

गांधीजी का जीवन बहुत ही व्यापक था, जीवन की अनेक शाखाओं के साथ उनका जीवन जुड़ा हुआ था। इसीलिए तरह-तरह के स्मारक बनाने तथा राष्ट्र की ओर से भी अमुक, खास स्मारक बनाने की इच्छा हो सकती है। लेकिन इन सब स्थूल स्मारकों से सच्ची यादगार का काम पूरा नहीं होगा। उल्टे, भय है कि ऐसे स्मारकों के कारण मुख्य बात आँखों से ओझल हो जाए।

भावनाओं का उफान

कई बार ऐसा होता है कि किसी खास मौके पर भावनाओं में ऊान आता है। फिर उस भावना को शान्त करने के लिए मनुष्य कुछ काम कर डालता है, तो इससे वह उफान धीरे-धीरे बैठ जाता है। लेकिन गम्भीर मनुष्य दुःख के आवेग को भीतर-ही-भीतर दबा देता है और उससे बल प्राप्त करता है। जहाँ ऐसी गम्भीरता नहीं होती, वहाँ यह आवेग रोने-कलपने अथवा आँसुओं के रूप में बाहर फूट पड़ता है। इस तरह चित्त शान्त हो जाता है।

इसी प्रकार पूज्यबुद्धि के कारण भी मनुष्य कुछ समय के लिए भावना से भर आता है और बाद में उसे बाहर व्यक्त करके शान्ति पाता है। ऐसे मौके पर रात-रात-भर भजन करनेवाले अनेक मनुष्य मैंने देखे हैं। भजन का भी एक उफान होता है, लेकिन जीवन पर उसका कोई खास असर पड़ता है, ऐसा दिखाई नहीं देता। भले ही उसमें सद्भाव का अंश हो, पर वह केवल ऊान भर होता है और भजन उसे बाहर निकालने का एक साधन है। यही बात स्मारक के बारे में लागू होता है।

उन दिनों बहुतों को ऐसा भी लगता था कि हमें प्रायश्चित्त करना चाहिए। मैंने कहा : “यह प्रायश्चित्त क्या होगा? हमारे मन के किसी कोने में भी यह शंका रह गयी हो कि हिंसा से भी कुछ लाभ होता है, तो उस वहम को मन से निकाल देना ही उत्तम प्रायश्चित्त है। लेकिन यह कोई बोलकर बताने की बात नहीं और न बोलने मात्र से वह होने ही वाला है।” संक्षेप में, अगर हम अहिंसक जीवन जीकर नहीं बताएँगे, तो जो भी स्थूल स्मारक खड़े करेंगे, उससे लोग हँसेंगे ही। इसलिए हम आत्म-मन्थन करें। मूल बात यह कि हमारे जीवन में परिवर्तन होना चाहिए।

गाँव-गाँव को गांधी-घर बनाइए

गांधी-निधि ने कुछ गाँवों में ‘गांधी-घर’ बनाये हैं। लेकिन मेरा कहना तो है कि गाँव-गाँव गांधी-घर होना चाहिए। यह गांधी-घर ईट-पत्थर का नहीं, सत्य प्रेम-करुणा का बनेगा। ईट-पत्थर, चूने से तो मामूली घर बनता है, ‘गांधी-घर’ नहीं। लेकिन लोग ईट-चूने से घर बनाते और उस पर लिख देते हैं ‘गांधी-घर’। नाम-महिमा अपार है, इसमें शक नहीं। उससे प्रेरणा मिलती है, वह भी ठीक ही है। लेकिन असली ‘गांधी-घर’ इस तरह नहीं बनता। वह तो बनेगा सत्य-प्रेम-करुणा से और अब आज यही काम आएगा।

यही देखिए, आज की नयी पीढ़ी को गांधीजी के विषय में प्रत्यक्ष कोई जानकारी नहीं है। जिन्होंने गांधीजी को देखा और उनके साथ काम किया, वे सभी 15-20 वर्षों में दुनिया छोड़कर चले जाने वाले हैं। जैसे नदी में नया-नया पानी आता और पहले का बह जाता है, वैसे ही मनुष्य भी अनेक आते और चले जाते हैं। तो, इस नयी पीढ़ी को गांधीजी का दर्शन उनके विचारों द्वारा ही करा सकेंगे न? आज के युग के अनुरूप इन विचारों पर अमल करके बताना पड़ेगा।

नये युग के अनुरूप नया मिशन

बापू तो क्रान्तदर्शी थे, बहुत दूर का देख सकते थे, बहुत आगे का विचार रखते थे। इसलिए उन्होंने नये युग के अनुरूप नया मिशन पहले से ही सोच रखा था। उन्होंने देखा कि एक बार स्वराज्य मिलते ही ‘स्वराज्य’

शब्द फिर लोगों को इतनी प्रेरणा नहीं दे सकेगा, उत्साहित नहीं कर पाएगा। स्वराज्य का ध्येय आँखों के सामने था, इसी कारण लोगों में संकल्प-शक्ति पैदा हुई। उस ध्येय की सिद्धि के निमित्त पुरुषार्थ के लिए लोगों ने कमर कसी। इसी तरह स्वराज्य मिलने के बाद लोगों के समक्ष कोई व्यापक संकल्प हो, तभी उनकी शक्ति बढ़ेगी। उसके बिना लोग सुस्त हो जाएँगे, उनकी शक्ति क्षीण होती जाएगी।

यों, गांधीजी जानते थे कि स्वराज्य के बाद लोगों के सामने कोई नया शब्द चाहिए, नया विचार चाहिए, कोई नया ध्येय चाहिए। अतएव पुराना ध्येय पूरा हो, इसके पहले ही उन्होंने नया ध्येय लोगों के समक्ष रख दिया। पुराना शब्द सार्थक होने से पूर्व ही दूसरा शब्द दे देना चाहिए, यह समझकर उन्होंने शब्द दिया; ‘सर्वोदय’। उन्होंने कहा कि स्वराज्य के संकल्प की सिद्धि के बाद हमारा नया संकल्प है; ‘सर्वोदय’।

सर्वोदय अर्थात् सर्व का उदय; मेरे अकेले का ही नहीं, सबका। जब तक सर्वोदय नहीं होता, तब तक शोषण कायम रहता है, शासन की पकड़ कायम रहती है। इसलिए स्वराज्य भी यथार्थ रूप से लाने के लिए सर्वोदय की आवश्यकता है। इसलिए आज के युग के अनुरूप यह सर्वोदय-मिशन गांधीजी हमारे सामने रख गये हैं। यह मिशन पूरा करके ही हम नयी पीढ़ी को गांधीजी का सही दर्शन करा सकेंगे।

सर्वोदय का यह संकल्प देश में धीरे-धीरे जाग रहा है। इस प्रकार के संकल्प एकदम नहीं जागते। खासकर, जब त्याग करने का संकल्प जगाना हो तो थोड़ा समय लगता ही है। जो विचार चिरकालीन महत्त्व के होते हैं, वे धीरे-धीरे उगते हैं, जबकि जो चिरकालीन नहीं होते, वे घास की तरह उगते हैं और वैसे ही जल्दी-जल्दी क्षीण भी हो जाते हैं। बापू का बोया हुआ विचार-बीज आज अंकुरित हो रहा है। आज जरूरत है, सातत्यपूर्वक काम करके उसे पोषित करते रहने की। यह सर्वोदय का संकल्प जब देशव्यापी हो जाएगा, तब लोगों को उसका चमत्कार दिखाई देगा और तभी कहा जा सकेगा कि हमने बापू का सच्चा स्मारक खड़ा किया।

The Sarvodaya Samaj of Gandhi : The Challenges before us

Prof. N. Radhakrishnan

Let us begin this discussion by reflecting on the advice of Gandhi: “Be the change you want to see in the world”.

The one major question that would cross our mind at this stage is to what extent can we adopt the core of this advice of Gandhi when we debate “the India of Gandhi’s Dreams of a Sarvodaya Samaj” or revisiting the kind of challenges that lie before us when any serious effort is made towards the realization of the dreams of Gandhi.

It may be admitted at this stage that in our preoccupation with small and big things, inadvertently we allowed to push to the background many other important aspects of our nation and India’s survival. All of a sudden the following vital areas that threaten the very existence of this nation have become nobody’s concern:

- (a) The threats of terror groups (both home grown and foreign) to India’s sovereignty,
- (b) Slow pace of Poverty alleviation efforts to ensure justice to all,
- (c) The growing inflation & black money,
- (d) The spreading violence,
- (e) Atrocities against women and weaker section,
- (f) Distribution of lands to the landless and employment to the unemployed.

This is the Truth of India today despite all the other impressive and commendable achievements as a nation. How would have Gandhi responded to these challenges?

Gandhi’s challenge

It is a fact that Gandhi continues to challenge many postulations and keeps on reminding humanity that there is a ‘Truth’ beyond all what we perceive and hold to be ‘truth’. By making truth as the axis of all his endeavors Gandhi was seeking the spirituality of truth itself which is the very basis of science. He there by

The India of Gandhi’s Dreams of a Sarvodaya Samaj or revisiting the kind of challenges that lie before us when any serious effort is made towards the realization of the dreams of Gandhi.

convincingly challenges those who espouse the notion that spirituality and science need to be at war with each other.

Here, Gandhi out-grows the condescending position of a social scientist and revolutionary thinker and social activist that was assigned to him by commentators and historians.

If science is ‘truth-seeking’, by making his life “Experiments with Truth” Gandhi went far beyond the traditional parameters of classifications. Gandhi who initially held the view that ‘God is Truth’ reversed it later as, ‘Truth is God’ there by asserting the supremacy of truth over everything. He reminds us here of Einstein’s statement that imagination is greater than knowledge.

It is widely acknowledged that Gandhi evolved a philosophy and life style which was permeated with spiritual insights, scientific truth and practical wisdom.

It is widely acknowledged that Gandhi evolved a philosophy and life style which was permeated with spiritual insights, scientific truth and practical wisdom. He did not see any difference in them and when he asserted in his autobiography, ‘What I want to achieve – what I have

been striving and pining to achieve these thirty years—is self realization, to see God face to face, to attain Moksha’, (page x) he was restating the profound relationship between the spiritual and the material.

Gandhi was not interested in the argument whether religion is forerunner of science or science has always been nurturing religion or religion and spirituality are older to science. He could see how science out-grew the importance of religion in the life of individuals as more and more intelligent men of science and technology devoted their time in unraveling and developing scientific truth and capability. The champions

and custodians of the spiritual domain relapsed into just meditative and contemplative life styles there by becoming status quoits. Science and technology with its manifold focus and application came into the daily life of people with surprising and hither to unbelievable results. The primacy of religion steadily eroded while science forged ahead with unstoppable speed and energy.

Science vs the moral fiber of the individual

This also implies that there is a greater power within every human being in his/her consciousness. The outer world has been effectively influenced by changing what is within us. The inner world constitutes a vast reservoir of untapped energy which, if used diligently, has the power to take on the material world. The courage to make every crisis into an opportunity and every obstacle into a possibility springs from the inner and spiritual fiber of the individual. Newton’s Law of Motion, if taken in its metaphorical sense, illustrates this argument further, “every object in the universe attracts every other object with a force directly proportionate to the product of their masses and inwardly proportional to the square of the distance between their centers”.

Just like science and scientists, who believe that there is nothing impossible in life, Gandhi held on to truth like a baby clinging to its mother. When he emphasized the power of love, compassion, truth, nonviolence, even many of his close friends raised their eyebrows. Many had reservations about his plans to take on nonviolently the mightiest Empire of the day. His claim that India could win the freedom without resorting to violence and war was also met with mixed reaction. His ideas were described impractical, naïve, or even dubbed as ‘A Mid-Summer Night’s Dream’.

Undisturbed by these barbs, Gandhi pursued his ‘Experiments with Truth’ with the precision and devotion of a scientist. He was guided by the teachings of Gita and the

assertion of Thoreau who wrote, “I know of no more encouraging fact than the unquestionable ability of man to elevate his life through conscious endeavor”.

What is important is the ability of every human being to nurture their spirit and inner resources and allow to transcending the walls and fences that hold them captive. Whoever is able to assert their mental and spiritual freedom will eventually emerge as liberated souls. John Milton’s words corroborate this: *“the mind is its own place, and in itself can make a heaven of hell, and a hell of heaven”*.

Gandhi’s seminal contribution lies in the area of blending science and spirituality as revealed in the philosophy and practice of Satyagraha. The Satyagraha as enunciated by Gandhi seeks to integrate spiritual values, community organization and self reliance with a view to empower individuals, families, group, villages, towns and cities. Robert Payne in his perceptive study of Gandhi remarks, “Gandhi was continually experimenting with truth and inventing new forms of force. And just as Satyagraha was never “truth force”, so it was never “nonviolence” or “passive resistance”, although it included them in its ever-widening orbit.

What Gandhi had in mind from the beginning was something essentially positive, an outgoing of spiritual power and purification through suffering. The legendary King Harishchandra, who sacrificed his kingdom, his wealth, his wife and child, in order to honor the word given by him, was an example of Satyagraha. Gandhi had seen the play when he was a boy, and it made a deep impression on him. “Why should not all be truthful like Harishchandra? This is what I asked myself day and night”, he wrote in his autobiography. “To follow truth and to go through all the ordeals Harishchandra went through was the one ideal it inspired in me”. By the force of truth and by the willingness to sacrifice everything

he possessed he overcame all obstacles. In Gandhi’s mind truth and sacrifice were close bedfellows (p 477).

Kireet Joshi, an eminent scholar has argued,

“It does not occur to us that our Indian culture has developed over millennia a multi-sided science through the pursuit of which faculties which lie above the ranges of physical senses and rational intelligence can be developed.

This science has developed assured methods resulting from the principles, powers and processes that govern experiences and realizations of the highest possible objects of knowledge. This science is, what Swami Vivekananda called, science par-excellence. This is Indian Yoga, developed and matured by Rishis and yogins in an unbroken chain throughout the history of India right up to our own times. This yoga has been looked upon as practical psychology and yogic methods have something of the same relation to the customary psychological workings of man as has the scientific handling of the natural force of electricity or of steam to the normal operations of steam and of electricity. And they, too, are formed upon a knowledge developed and confirmed by regular experiment, practical analysis and constant result. Indeed, yoga is a science – an intuitive science – which deals with the ranges of psychological and spiritual being and discovers greater secrets of physical, psycho-physical and other higher worlds. As in physical sciences, so in yoga, the object is an assured method of personal discovery or living repetition and possession of past discovery and a working out of all the things found.

Spirituality is thus not a matter merely of sporadic or occasional experience, but a matter of authentic possession of knowledge and effective power of realization and action.

It is on the basis of this science that we can bridge the gulf that seems to be existing between science and spirituality. It is on the basis of the yogic knowledge that one can confidently hope to seek enlargement of physical sciences and also to develop the required power of transformation of human limitations, human passions, human ignorance and all the frailties which are found in human nature”.

The manner, in which in the post-independence era in India, Satyagraha is being used or misused, has also raised very serious issues. In a large measure almost all categories of people in India resort to some form of Satyagraha to ventilate their grievances and to wrest their rights. It is amazing to see how this instrument is being used now by political parties, from the extreme right to the left, trade unions, youth organizations, women activists, religious groups, parliamentarians, law-enforcing agencies, lawyers and even judges in their efforts to ensure what each of this category calls 'justice'.

Many sensitive souls point out that there is nothing 'Gandhian' in their approach and they are abusing the enormous potentials of this matchless weapon. One of the paradoxes today is that the same instrument is being mercilessly used to denounce all what Gandhi stood for also. Satyagraha, unfortunately, has become in the hands of a large segment of politicians, trade unionists and others a powerful instrument to settle scores and get their demands accepted. And in this game the concept and practice of Satyagraha which Mahatma Gandhi gifted to humanity has become one of the most vulgarized, misused and least understood concepts and practice. However, Satyagraha, which is central to the understanding of Gandhi's thought and work, continues to attract people in a large measure. Let us for a moment take a look at what Gandhi himself said about it:

- "For the past thirty years I have been preaching and practicing Satyagraha. The principles of Satyagraha, as I know it today constitute a gradual evolution.
- Satyagraha differs from Passive Resistance as the North Pole from the South, The latter has been conceived as a weapon of the weak and does not exclude the use of physical force or violence for the purpose of gaining one's end, whereas the former has been conceived as a weapon of the strongest and excludes the use of violence in any shape or form.
- The term Satyagraha was coined by me in South Africa to express the force that the Indians there used for full eight years and it was coined in order to distinguish it from the movement then going on in the United Kingdom and South Africa under the name of Passive Resistance.
- Its root meaning is holding on to truth, hence Truth-force, I have also called it loveforce or soul-force. In the application



of Satyagraha I discovered in the earliest stages that pursuit of truth did not admit of violence being inflicted on one's opponent but, that he must be weaned from error by patience and sympathy. For what appears to be truth to the one may appear to be error to the other. And patience means self-suffering.

So the doctrine came to mean vindication of truth not by infliction of suffering on the opponent but on one's self.

The axis of the wheel consists of Truth and Nonviolence. While the wheel has four spokes, the inner circle next to the axis, consists of Strength, Love, Knowledge and Food. On the outer circle, there are Guide to Health, Sociology, Art of Teaching and Economics. The outermost circle has twelve segments, viz., Service to Harijans, Uplift of Women, Casteless Society, Love of Mother tongue, Nai Talim, Propagation of Hindi, Khadi, Equality, Village Development, Detachment, Healthy Village and Village Cleanliness.

Development of social structures and individual empowerment take place only when there is a meaningful interaction among the various parts that constitute the wheel. The wheel which relies on the spiritual and material capacity and strength of the individual and the fortitude and the general ethos of the society gathers momentum as it moves on. This movement is the journey to peace.

Morality and the challenge of civilization

Many Americans now accept that the September 11 events are to be viewed in the general emerging scenario. They also point out that US must bear a lot of responsibility for its contribution to the present situation. The US foreign and economic policies towards developing and least developing countries must be revised drastically. Americans have given primacy to materialism, consumerism and individualism at the cost of spiritualism and lost their ability to feel concerned for each other.

Gandhi, as is known fairly now, tried to infuse the fresh air of spiritualism in every domain of human endeavor, including politics. He earned the name of a saint trying to spiritualize politics. His mantra was to wipe away tears from every eye.

Religion is meant to be an advocate of peace. But we know that the biggest of wars have been fought in the name of religion. There are many of us who would not like a world to be partitioned on the basis of religions, creed, castes and money. Such a world of peace demands an attitudinal change. In such a world the strong will not exploit the weak, the rich will not harm the poor, and the privileged will not ignore the underprivileged.

Gandhiji had stated that the very essence of our civilization is that we give permanent place to morality in all our efforts--public or private. The ancient Vedic philosophy of "Sarva Dharma Samabhav" or Respect for all religions" formed the basis of Gandhiji's religious humanism.

We have a lot to learn from animal world. Swans and Penguins remain faithful to their water life long. Bees, Ants and Birds form the disciplined social groups. Elephants have a joint family system caring for each other. Even the Crows care for the injured mate. If only

all of us care for each other and follow the same voice of Gandhiji, the world would be a better place to live in for everyone. The aim of religion is not to fill the empty vessel but to turn the eye of soul towards the light to evolve a common understanding of all religions and their relevance to achieve peace by working collectively.

It is said that science emerged as a revolt against the Age of faith. Science gradually helped heralding the Age of Renaissance.

Religion is meant to be an advocate of peace. But we know that the biggest of wars have been fought in the name of religion. There are many of us who would not like a world to be partitioned on the basis of religions, creed, castes and money.

Science is also hailed as a major phase in human history. It was argued in many quarters that it posed a major threat to the very existence of human kind.

Spiritual vs Material living

Spiritual living is responsible living. Gandhi said, "I am responsible not only for myself but for all of you just as all of you are responsible for me". When we live truly selfless life, we never think in terms of personal profit or pleasure but always in terms of global prosperity and world peace. For even these grand goals ultimately depend not on government but on selfless efforts of little people like you and me of the long run, friendly persuasion is the only effective teacher. Human beings can always grow". If the man gains spirituality, Gandhi said, "the whole world gains with him".

Gandhi used a number of symbols and concepts in his long public career in both South Africa and India in his efforts to usher in a new era of clean politics and orderly development. There was no pretension or hypocrisy about him. He never asked others to do anything which he did not do, It is history how he conducted his affairs. He never treated even his own children in any special manner from other children. In the Ashram settlements they also grew up along with the other children, sharing same kind of food and other facilities and attending the same school. When a scholarship was offered to him for one of his sons to be sent to England for higher education, instead of giving it to his own children, Gandhi gave it to some other boy. Of course, he invited strong resentment from two of his sons and there are many critics who believe that Gandhi neglected his own children and he was not an ideal father. The voluntary abdication of his highly attractive income from his legal profession and taking to a simple life and his profound conviction of equality of all men and women show the essential Gandhi who grew into a Mahatma.

The casteless and classless society he was striving to establish aims at the realization of both material and spiritual prosperities. He described the society that he was aiming as Ram Rajya. Non-Hindus and a section among his admirers failed to understand what he meant by Ram Rajya, Gandhi said, "By Ram Rajya, I do not mean Hindu Raj, I mean by Ram Rajya, a Divine Raj the Kingdom of God." His faith in God was unshakeable. His god was not a personal god. He repeatedly chanted Ram nama but asserted that his Ram is not the Lord of Ayodhya. His Ram is the Almighty God which guides him to noble action and whose presence can be felt everywhere. The Ram Rajya he was advocating was an ideal social order where an ideal King Rules over his subjects without any distinction whatsoever. Truth dharma and justice will be the dominant characteristics of such a society. Both the Pandit and the poorest of the poor will have equal say in the governance. Nobody will be discriminated against anybody,

Ram Rajya – an Utopia ?

The Ram Rajya of Gandhi's dream was not an Utopia where idealism alone will prevail. There was much in common if one can stretch it between Plato's ideal Republic and Gandhi's "Ram Rajya" though Tolstoy's influence on Gandhi could be discernible in formulating his vision of a new society. The major difference between the approaches of Gandhi and Plato is that while Plato is philosophical Gandhi is pragmatic and down to earth a realist.

For Gandhi rights and duties are complementary and a citizen who is not conscious of his duties has no right to think of his rights. Similarly, Gandhi believed, "There can be no Ram Raj in the present state of iniquitous inequalities in which only a few roll in riches, while the masses do not get even enough to eat", does this Gandhian passion for social justice remain a far cry? No one knows.

The ruler, in the modern context the state, like Lord Ram, Gandhi's ideal King- is Custodian of not only the physical domain of the people but also an inspirer of his people to higher realms of spiritual attainments.

Relevance of Gandhi's Talisman

It may be of use here to remember in this context the advice Gandhi gave to the new rulers of India, which is now known as Gandhi's Talisman. Gandhi said in his advice:

"I will give you a talisman, whenever you are in doubt or when the self becomes too much with you, apply the following test: Recall the face of the poorest and the weakest man whom you may have seen and ask yourself if the step you -contemplate is going to be of any use to him, Will he gain anything by it? Will it restore him to a control over his own life and destiny? In other words, will it lead to Swaraj for the hungry and spiritually starving millions?

In India, in our anxiety to interpret, deify or denounce Gandhi – overtly, covertly or subtly – either Gandhi became an icon with a large segment of opinion makers, political leadership, journalists, writers, and researchers. To them even critical analysis of Gandhi was anathema. A kind of institutionalized ritualism grew around almost everything associated with Gandhi.

Vinoba Bhave, Jawaharlal Nehru and Jaiprakash Narain as exemplars of Satyagraha

Three leaders, in three different ways, moved away from the institutionalization and deification of Gandhi and gave courageous interpretation of Gandhi's Satyagraha in the context of the emerging scenario. They are Acharya Vinoba Bhave, Pandit Jawaharlal Nehru and Jaiprakash Narain. The bold initiatives of Vinoba Bhave in interpreting Gandhi, the visionary leadership provided by Jawaharlal Nehru in consolidating

the fruits of freedom and knitting India and the magnificent role played by Jaiprakash Narain in galvanizing the youth, the constructive workers and in this process himself emerging a sort of inspired conscience-keeper in the post Gandhian era. I am conscious this is an observation which will be hotly contested by many. Well, let us discuss.

Gandhi, thus conceived and evolved Satyagraha, both as a 'science in the making' and as a 'surgery of the soul' while Vinoba Bhave tried to transform the Gandhian legacy of Satyagraha into a way of life and a mode of action, Civil Disobedience or Passive Resistance, which acquired new depth and meaning with Gandhi was gradually transformed into Satyagraha, a powerful instrument both in individual and societal transformation with morality, ethics, spirituality, religious insights humanism.

After Gandhi & Vinoba Bhave in India Satyagraha over the years has become more of a strategy or methods or tactics in the hands of agitating activists of various hues. The extending tentacles of consumerism and materialism also seem to have made serious inroads. The failure of Constructive Program which Gandhi had nurtured with great care to sustain and energise the small but significant initiatives taken by individuals fell short of expectations after Gandhi.

The decline and misuse of Satyagraha

The general decline of morality and the near death of religions and the coming into being of new set of values which are essentially the gift of science and technology have rendered the Gandhian vision of social change at least in the eyes of the champions of unlimited material growth out of date. Coupled with this emerging scenario is the romantic notion entertained by the Gandhian thinkers about the invincibility or the all time relevance of Satyagraha to solve all human problems under all circumstances. It is naive to believe that Satyagraha will be effective

in all circumstances. While Satyagraha has degenerated and being vulgarized in India, the relevance of it as a mode and tactics for social and political and social action is increasingly felt in other parts of the world. This indicates that it is equally naive to believe that Satyagraha is dead.

Satyagraha sprouts in cultures abroad

The seeds of Satyagraha are sprouting in many parts of the world and what is required is perhaps a creative adaptation rather than blind imitation, Satyagraha, as Gandhi demonstrated has infinite possibilities and has emerged

The Core of Satyagraha is action. This means, we have to go beyond rituals and the Centenary of the Satyagraha, therefore, calls for honest introspection and serious restructuring of our national priorities to achieve the social, economic and cultural goals Gandhi lived and died for.

now as a powerful instrument for the moral resurrection and it should appeal to the Gandhi in each one of us in our efforts to discover ourselves and be of help to the fellow human beings. The contemporary decay of Satyagraha in India may be due to the fact that there is no Gandhi with us now but the fact cannot be brushed aside that he lives with his ideas and the noble example he provided and inspiration that he offers.

As we enter the new millennium with its hopes, anxieties and with a new set of values different from that of the century which witnessed the triumph of some of the Gandhian methods and tactics, what is required is an honest examination of the entire gamut of the 'experiments' Gandhi

conducted and instead of trying to harp on the efficacy of them lock, stock and barrel and entertain hopes of the adoption of these ideals, methods and tactics in all societies and at all times we should act in conformity with the Gandhian assertion 'one step enough for me.'

The need to reinvent Satyagraha

What Malcom Maclure in his recent study of Satyagraha points out assumes importance in this context: "There is no clear verdict on the degree to which Gandhi's experiments were scientific. But there can be little doubt that his experiments were more scientific than Mao's "experiments" Why? If we can identify what made Gandhi's Satyagraha to some degree genuinely scientific, then perhaps Satyagraha can become still more scientific in future and have growing impact in increasingly scientific world".

Let me quote a paragraph from an earlier observation of mine for your consideration:

"The Core of Satyagraha is action. This means, we have to go beyond rituals and the Centenary of the Satyagraha, therefore, calls for honest introspection and serious restructuring of our national priorities to achieve the social, economic and cultural goals Gandhi lived and died for. Gandhi left an unfinished agenda behind him for his nation to complete.

The time has come for us to unite for a challenging common cause once again. This requires bold initiatives to usher in 'Swaraj for the hungry and spiritually starving millions', as Gandhi exhorted us in the now-famous Talisman. This will be possible only through a creative adaptation and reinventing the Satyagraha along Gandhin lines". (From the keynote paper presented at the World Peace Forum Conference at University of British Columbia, Vancouver, Canada).

At a time when Indian Nation is facing a crisis of sorts it wouldn't be out of place to ponder over some of the "Promises" those who

fought for Indian independence, made to this nation. Gandhi who shaped and led the freedom movement from the front also produce counter effects and need not necessarily promote what was expected.

The ushering in of the Panchayati Raj institutions after an agonizing delay of over 50 years was a bold initiative which the nation has undertaken belatedly. The Gandhian vision of power to the people, grass-root level planning, involvement of the so-called powerless in shaping their future and offering legitimate role for women to play equal role in the formulation of policies and programme of their village, in turn, has had far-reaching effects in their own personal and family life- these aspects were all enshrined in the Gandhian vision of Panchayati Raj’.

Though there is much to be desired in the manner in which these institutions have come into existence now, it is a great opportunity for the Indian women. The best example of how Panchayati Raj’ could empower women is provided by Kerala where a magnificent demonstration of women’s capacity to play responsible roles in the economic, social, political and educational life of state is being provided by several thousand women to whom Panchayati Raj has offered leadership roles. The three factors which stand out in this metamorphosis are, education, awareness creation and opportunities. Women are no longer the pale shadow of men nor are they timid or frightened. In several instances men have been pushed to defensive roles by enlightened and empowered women of the area. Probably what is required at all India level is the emulation of the Kerala model of women empowerment. Gandhiji had dreamt of such a situation and now the country can legitimately feel proud that at least in one area his dreams are becoming a reality. Emphasized among many other things are equality of opportunities to all irrespective

of anyone’s colour, gender, language, social or religious affiliations.

Gandhi who brought thousands of women in to his movement visualized a free India where they will get equal opportunities in all spheres of activities and where their voice would be respected and prevailed, but then as in many other aspects, Gandhi’s passionate pleas and bold initiatives to ensure gender equality where better pills to the male-dominated society. Cry of India women for justice cannot also be dismissed as imaginary, but then, social orders allow substantial changes only as process of general development. Just like economic development or political changes are the results of socio-political pressure and require awareness and understanding in order to sustain, women empowerment and subsequent disappearance of gender inequality have to be the logical extension of the social matrix which is constantly under pressure and consequential change. Empowerment as a process is not something that is to be missed; it is a reflection of logistic and natural extension of cohesive strength which enthuses large movements from cell to cell. Once this process is set in motion it is difficult to stop it nor will it be possible to retard it. An empowered organism is motivated and surcharged instrument of genuine awareness.

“As I travelled through the land we were greatly impressed by the part women played in the political life of India in the struggle for independence and that many of them had gone to jail like the men. Gandhi also worked to liberate women from the bondage of Hindu and Muslim traditions” wrote Coreta Scott King after her historic visit to India with her illustrious husband, Dr. Martin Luther King Jr. in 1959.

What Indian women have been able to achieve is to be understood in the larger perspective. What needs to be done has also to be understood properly.

Lessons from Gandhi and Vinoba

Those who claim that the present movements for socio-political changes are inspired by Gandhi may well remember the following:

- (1) Satyagraha was never used by Gandhi to score political points.
- (2) Gandhi's satyagraha movement was principle-centered and spiritually guided.
- (3) Gandhi's satyagraha was never aimed as a coercive tactic.
- (4) Gandhi was never carried away by emotional considerations.
- (5) Gandhi's language, body language and activities were dignified and always left room for dialogue and reconciliation.
- (6) Gandhi's satyagraha always highlighted moral principles.
- (7) Gandhi had the courage to withdraw his movement when he realized that unprincipled elements would infiltrate and would use the base for selfish or opportunistic goals.

It seems we as a nation had ignored the seven deadly sins identified by a reader and which Gandhi as an editor reproduced in the columns of his news paper. They are :

- (1) Wealth without work,
- (2) Pleasure without conscience,
- (3) Knowledge without character,
- (4) Commerce without morality,
- (5) Science without humanity,
- (6) Religion without sacrifice and
- (7) Politics without principle.

If we read this, keeping in mind Gandhi's much misunderstood statement on modern civilization, one cannot help feeling that Gandhi was prophetic in his vision and assessments. When he described the emerging civilization as soulless, he was criticized. The warning he issued through 'Hind Swaraj' was dismissed even without proper discussions. His spiritual successor Vinoba Bhave's

effort to integrate social action nurtured in humanism and spirituality and centuries-old wisdom of the land that well-being and happiness lies in striving to achieve Jai Jagat and Vasudeiva Kudumbakam were all viewed as crowded judgment and his great work as freak initiatives.

Let me conclude this discussion by quoting a paragraph from one of my earlier presentations on January 31st 1997 :

"Gandhi's economic thoughts were also largely shaped by India's spiritual tradition and his own practical experience. He firmly believed that economics like all other fields of human activities could not be divorced from ethics and religion. Moksha (Salvation) the Summum bonum, the ultimate goal of all human endeavour could be attained only through a fair practice of dharma (religion), artha (economy), and Kama (desire). Alwin Toffler, the celebrated author of Future Shock and the Third Wave makes a very interesting study of the various options available to humanity. He says there are at the moment three waves, the Capitalist, Marxian and the Gandhian. While the capitalist model is built on exploitation, the Marxian model depends on violence, confrontation and conflict the Gandhian model is based on the desire to provide a better life. The nonviolent model which is creative and constructive offers social justice and peace, the hallmark of sustainable development."

Had the revolutionary steps Vinobaji undertaken along with Jayaprakash Narayan to realize Gandhi's dream of India been continued, the Sarvodaya Samaj dreamt by Gandhi would have been a reality. Social justice and equality to all were the corner-stones of the new social order. The Sarvodaya Samaj Gandhi advocated and strove for would have effectively prevented and eliminated the seeds of corruption, and general decay of moral, ethical and spiritual values, both in public and private life.

Let us draw inspiration from Gandhi that undying-optimism and courage of conviction are the most dependable arrows in the armory of nonviolent soldiers in their spirited efforts for change, and change is the law of nature.

Prof. Neelakanta Radhakrishnan

The role Prof. Neelakanta Radhakrishnan, the recipient of Gandhi-King-Ikeda Community Builders Award has been playing in the global spread of nonviolence by interpreting Gandhian nonviolence creatively and adapting it to the emerging global scenario has been widely acknowledged. He has deviated significantly from the traditional or dogmatic interpretation of nonviolence. To him, nonviolence is a creative force of empowerment and enlightenment and not any dogmatic bind.

He started his career as a Sub-editor in a daily newspaper and later joined the Gandhigram Rural University in South India to teach languages, Gandhian thought and organized Youth Peace Brigades in over 100 villages and in the University campuses for two decades.

He held such positions as Dean of Faculty of Languages, Controller of Examinations, Director of Public Relations and Director of Centre of Gandhian Studies in the Gandhigram Rural University where he worked twenty-two years. He was appointed by Government of India to head the National Memorials of Gandhi in Delhi for 12 years.

A prolific writer that he is, he has authored over 75 books on such diverse areas as literature, communication, human rights, Gandhian thought, education, peace movements, theatre arts. As a Visiting Professor, he has lectured/organized courses on peace movements, human rights, Shanti Sena, Gandhi, comparative religion etc. in over 40 Universities in different parts of the world. Prominent among them are U. N. Universities at Tokyo and Costa Rica, University of Hawaii, Soka University (Tokyo),

Soka University of America, University of Rhode Island, Thamassat University, University of British Columbia, University of Alberta, University of Calgary, Harvard University, Tufts University, London University etc.

Represented India at several International Forums and was the leader of an Indian team of scholars and artists to UNESCO in 1995 to arrange Conferences and Exhibitions on Gandhi during the 125th birth anniversary of Gandhi.

He has founded the Gandhi Media Centre (New Delhi), G. Ramachandran Institute of Non-violence and ShantiSena (Trivandrum), Ikeda Centre for Value creation (Trivandrum),

P.K.N.Trust (Kollam) and Institute of Applied Management, Madurai. He has also been recently elected as Working Chairman of Indian Council for Gandhian Studies. He is also the Chairman of Citizens for Human Rights India.

The Morehouse College, Atlanta recently inducted him into the International Collegium of Scholars in recognition of his outstanding contribution to education, peace and human rights. The Soka University of America conferred on him the first Honorary Ambassador Award in August 2002. The University of Kerala honoured with the Millennium Award in recognition of his exemplary work in various fields. He was awarded the Rajiv Gandhi Sadbhavana Award (2007), Acharya Mahapragya Award for Nonviolent (2008) and Vallalar Award (2008). The National Foundation of Communal Harmony under Government of India has selected him for its Annual Award(2013)

Address:

*Neelakantom, MGRA-30, D Lane,
Marappalam Gardens,
Pattom. P.O, Thiruvananthapuram,
Kerala-695004
Mob:+91 94470 47100*

Role of Educational Institution for Clean India

Dr. Lokanath Mishra

There is no gainsaying that we have not learnt the art of external sanitation to the degree that the English have. What is so distressing is that the living quarters of the menials and sweepers employed in the Viceroy's House are extremely dirty

Gandhiji had once said sanitation is more important than political independence. Making every village “Nirmal” (clean and healthy) is central to all development efforts. Clean, green and healthy villages are an enduring sign of India’s progress. Gandhiji emphasized that servants’ quarters should be as clean as the masters’ bungalows. “There is no gainsaying that we have not learnt the art of external sanitation to the degree that the English have. What is so distressing is that the living quarters of the menials and sweepers employed in the Viceroy’s House are extremely dirty”. This state of affairs the ministers of our new Government will not tolerate. Although they will occupy the same well-kept bungalows, they will see to it that the lodgings of their servants are kept as clean as their own. They will also have to pay attention to the cleanliness of the wives and children of the staff. Jawaharlal and Sardar have no objection to cleaning their own lavatories. This vision of a clean India is not alien to us. Many schemes have been made, implemented, and fell way short of reaching the targets. Swachh Bharat is an extension of the Nirmal Bharat Abhiyan (NBA), which was operational since 2012 (preceded by Total Sanitation Campaign and centrally sponsored Rural Sanitation Programme).

Gandhi’s Thoughts on Cleanliness

Along with ideas of Swadeshi and Non-Violence, Gandhi’s speeches and books have a special mention about his concern for cleanliness. He often addressed people urging them to maintain hygiene, making them aware of the threat of the diseases they were surrounded with in case of dirty streets, water logged ditches and filthy lavatories. He discouraged people from spitting and cleaning their nose on the streets and warned them of the spread of tuberculosis. He counselled villagers to keep away their cattle from taking bath in the water tanks meant for a source of drinking water and cooking purposes. He believed in not just talking about Independence but spent much of his time making the lives of Indians in other ways as well

Gandhi’s Thoughts on Education

M.K Gandhi believed in an education system that brought the best out of a person’s body, mind and spirit. A true patriot, he was aware of the deep seated problems of dissemination of education in English

medium. Worried about the way Indians were becoming imitators of the West, he propagated education in vernacular languages so as to avoid a “de-Indianizing education”. Adamant to make Indians come out of the false belief that just learning English language was education and that was the only means of getting a job, he argued that education in English medium could not let the English speaking Indians influence the masses. He preached an education which made the students original, gave them the courage to think themselves and innovate based on their ability to research and application..

Awareness:- Public awareness is important. People should realize that cleanliness is very important. Gandhiji used to say cleanliness is next to godliness. Cleanliness injects lot of positive energy in people which increases efficiency. It requires lot of change in the attitude and mindset of the people. People should follow simple things like putting the waste material into dustbins. If the area around dustbin is not clean, people can not go up to the dust bin and they throw the garbage on the road near the dustbin and not in the dustbin. This is a vicious cycle. So utmost care should be taken to keep the area around dustbins clean.

The students of each school located in village area as well as urban area should make awareness among the people through swatch bharat march.

Governance:- PM mentioned that since India can reach Mars, nothing is impossible for Indians. This is true. But the main hindrance is governance. If we provide right environment, Indians can do miracles. For this organizations should be set up with complete autonomy with adequate funds so that top talent can be attracted and right leadership is provided. Their lies the importance of political leadership. Organizations like ISRO, BARC, Konkan Railway, IITs, IIMs have delivered results. Dr. Homi Bhabha, Dr. Vikram Sarabhai, Prof. Satish Dhavan, Er. E. Sreeharan have provided exemplary leadership even in the government set up. On the other hand weak governance at Municipal level, pollution control boards has led

to lack of cleanliness and pollution of water and air. Many times government bodies themselves violate Environmental laws. For example it is an offense to dispose sewage in river water without treatment. It is the responsibilities of Municipal bodies to treat the sewage. But this is not done in many cases. Pollution control boards are not able to enforce rules in this regard. It is also mandatory to segregate solid wastes in housing societies in many cities. But this is also not enforced. In India population is huge and it is necessary to provide adequate toilets and urinals. Stray dogs make the roads dirty with their potty and policy regarding this is not implemented strictly due to various reasons.

Technology:- We have seen our PM and other leaders with big brooms cleaning the roads. Apart from brooms, there are advanced equipment for sweeping the road and lifting the collected garbage and its transport in developed countries. The liquid waste from the urinals can be diverted to garden as it is rich in nutrients. Even nalla or sewage water can be treated by means of constructed wetland technology to raise plants in the garden. Now large number of Engineering colleges is spread across the country. Expertise available here can be used to provide technology solutions. We have a Mission but we need missionaries for this

Invisible dirt:- It appears that emphasis of clean India mission is on solid waste/garbage etc. But we should not ignore air and water pollution. Air pollutants released by industries, automobiles and other sources are harmful to health. In many cases sources such as ready mix concrete plants, automobile paint shops are very close to residential areas in cities and rules are not followed. Many of these air pollutants are carcinogenic and their effects are long term. Similarly water pollutants reduce the dissolved oxygen in rivers and are harmful to aquatic life. Clean Ganga Mission is launched. But other rivers also need cleaning.

Vivek college of Education A case

The young students of Vivek college with enthusiasm and a wish to keep their city, their India clean, took a pledge to spread the awareness

amongst the masses. For this, they went to clean Sabzi Mandi Bijnor along with their teachers incharge Mr Anuj Verma & Mrs Nidhi shukla . They picked up poly bags wrappers, rotten fruits, broken crates & vegetables etc that was polluting the area and causing damage to the human life. They also cleaned the area by sweeping with brooms. Students also spoke to people living in those areas about the importance of cleanliness and what role as a citizen, they can play in making their area neat and clean and free from pollution? The students displayed Banners, Placards and Charts that had information on keeping the area clean. Their efforts were appreciated as people applauded once they completed their task of cleaning the area around Sabzi Mandi Bijnor.

The students of Vivek college of Education have been regularly pitching in for cleanliness drives in Bijnor city . They have undertaken the River Ganga cleanliness campaign wherein they have been visiting the banks of the rivers to pick up garbage. Regular street plays have been performed by students of vivek college of Education to make the people aware of the necessity of keeping the city free from pollution dump and rubbish. Vivek college of education has also adopted Village Jalapur and nwalpur of bijnor district and students visit it often to do community service and educating the people for keeping their surrounding clean. Every year the student's teachers were visited to kalimandir of bijnor district for cleaning the temple

Conclusion

“The problem of sanitation and cleanliness in India is primarily a problem of appallingly poor governance, leading to starkly inequitable development. Secondly, it is a problem arising out of an equally appalling lack of self-governance among citizens manifesting in undisciplined and irresponsible civic behavior. Therefore, if MISSION 2019 has to succeed, India needs good governance on the part of governing institutions at the central, state, city and village levels. It also needs better self-governance on the part of citizens. Neither can happen without a sea-change in the national mindset. Mahatma

Gandhi's mantra for this change was – CLEAN INSIDE, CLEAN OUTSIDE. Unclean minds and hearts, unclean citizens' conduct, unclean business, unclean administration and, above all, unclean politics can never make India clean. The educational institutions will create audio-visual and creative print content that can be used by various stakeholders. Some preliminary initiatives will include like Education and awareness for the municipal and village school children. The Awareness drives for showcasing best practices from the schools and villages, A monthly bulletin, with print and online editions. We can conclude that cleanliness is important in our life as well as for the nation. It is well known that the Mahatma Gandhi personally took the effort to achieve the change that he wanted to see. It is of course too much to expect our present day leaders to go around the cities with their rising number of slums, and initiate a genuine drive to clean-up the surrounding. It is even less probable that they will pull themselves away from their market-focused pursuits and ineffectual, exclusive pursuit of GDP growth, to focus on the task of nation-building.

References

1. <http://www.mahatmagandhicentre.in/pdf/Booklet-v24th-Sept.pdf>
2. Shubhangi Rathi (2014) Importance of Gandhian thoughts about Cleanliness <http://www.mkgandhi.org/articles/gandhian-thoughts-about-cleanliness.html>
3. <http://www.mkgandhi.org/bahurupi/chap06.htm>
4. http://www.gandhi-manibhavan.org/gandhiphilosophybr/hilosophy_environment_sanitation.htm
5. <http://www.thehindu.com/opinion/blogs/blog-urban-prospects/article5192535.ece>
6. <http://www.niticentral.com/2014/02/27/modi-launches-mahatma-gandhi-swachchata-abhiyan-194080.html>

Address:

Principal,

Vivek college of Education Bijnor, U.P.

Mob.: 09457115093

Gandhi in the Eyes of a Layman

P. Maruthi

Clean and capable India of Gandhi's Dream: concept and challenges

Mohandas Karamchand Gandhi an average boy grew into a personality became a moving institution and loved and affectionately known as Bapu, Father of the Nation by virtue of his selfless service to others.

If we analyse, whether it happened just like that, accidental, spontaneous or circumstances that made him like that. For me all the above factors are responsible.

When Gandhiji was asked to give message, he replied "My Life is My Message."

What is his life?

Now let us apply and see his life for clean and capable India of Gandhi's Dream : concept and challenges :

As a child: After reading Shravana Pitribhakthi Nataka (a play about Shravana's devotion to his parents), he learnt to respect elders. And at the same time he saw a play of Harichandra, captured his heart and started thinking – Why should not all be truthful like Harichandra? This play had a great impact in the young mind of Gandhiji and started speaking Truth.

Truth, Non-violence, transparency, straight forwardness, selflessness and humanity surrounded him throughout Gandhi's life- personal, private and public life. I think these basic qualities of Gandhiji attracted thousands of people, resulting in the success of the movements that he led in India and South Africa.

Cleanliness is one of the eighteen constructive programmes emphasized by him.

I think basic concepts of Gandhiji are still challenges in India. I am sure and you will agree with me that concepts of Gandhiji are not in paper but he proved that it possible.

He emphasized that the authors of the Smritis, laid greatest emphasis on cleanliness both inward and outward.

Therefore, we should constantly implement the concepts proposed and practiced by Gandhiji

Gandhi's dream of clean and Capable India lies not only internal but also external and in all aspects of life.

Gandhi's encounter with Insanitary conditions in India and in South Africa:

He believed that in South Africa that insanitary conditions are also one of the major reasons for color prejudice.

In India he had seen the condition at Calcutta in the Congress session and motivated volunteers to take up the cleanliness work, along with him.

He formed an organization, namely Harijan Sevak Sangh to eradicate untouchability. Safai Vidyalaya was founded to invent methods that are easy and doesnot put people in that sort of work.

In all the Gandhi Ashrams on day to day basis and during mass events cleaning is one of the events.

Dignity of Labour: Gandhi emphasized the concept and ensured that everyone does cleaning.

Seeing the Untouchability (treating section of

people as untouchables by nature of the work that they were doing –scavenging) prevailed in India, he formed an organization, namely Harijan Sevak Sangh to eradicate untouchability. Safai Vidyalaya was founded to invent methods that are easy and doesnot put people in that sort of work. Safai Vidyalaya in Gandhi Ashram at Ahmedabad developed brooms, methods of cleaning, toilets/closets.

He emphasized that the authors of the Smritis, laid greates emphasis on cleanliness both inward and outward.

Let us examine experiments and experiences of Gandhiji in few areas mentioned in his Autobiography:

Personal Life: making the following personal incidents of Gandhiji public, like Meat eating, stealing, smoking, and assuming the authority of husband, his carnal desire and even his attempt to commit suicide are certain aspects that proved his integrity in personal life. He said :” **a man of truth must also be a man of Care**”

He was outcasted: When the Sheath pronounced that “this boy (Gandhi) shall be treated as an outcaste”, he never felt bad about those who pronounced but he also not compromised and reverted his decision of going to England for higher studies and tried to win the community by following the pronouncement. Gandhi said: I scrupulously avoided hurting their feelings. I fully respected the caste regulations. Later he won the admiration of those who pronounced that he should be treated as outcast.

External Cleanliness: He observed his father, who was ill, insisting on leaving the bed only struck him with wonder and admiration to his Father.

Promises and Vows: Promises and vows play a vital role in the lives of Indians. The three promises that he had given, while getting permission to go to England was kept by him even at odd situations of climate and his well-wishers advise through many ways like quoting distance and taking him to a restaurant, where his friend thought, Gandhi would not ask there about vegetarian and non-vegetarian dishes.

Strict Vigil over way of Living: Gandhi's strict watch over his way of living helped me to economize his expenses.

Gandhi as a Barrister:

Realized Honesty and Industry were sufficient to be a successful lawyer.

If we take care of the facts of a case, the law will take care of itself.

Facts means Truth, and once we adhere to truth, the law comes to our aid naturally. The true function of a lawyer is to unite parties riven asunder. He succeeded in this direction.

Insults and handling of it by Gandhi:

When Gandhi approached Mr. Ley, Administrator of Porbandar for financial help to pursue Higher studies in England, the Administrator said: Pass your B.A. first and then see me. No help can be given you now”

Train Incident at Maritzburg on the way to Pretoria : In spite of being First Class ticket, because of colour prejudice, he was thrown out of the compartment, on refusal to go to the van compartment. He had not swallowed it but written the General Manager, Railways. The General Manager, endorsed officer’s action, informed the station master to see that Gandhi reached his destination safely.

A stage Coach incident while going to Charlestown and Johannesburg:

The way the ‘leader’ white man in charge of coach behaved with Gandhi, was hurting, when he reached beyond tolerance, he resisted and won. Gandhi wrote to the coach company about the incident. The coach company, replied satisfactorily’

Train incident from Johannesburg to Pretoria: In this route to travel in train, first or second class tickets are not issued to Indians. However, Gandhi convinced and obtained 1st class Ticket: At Germiston, guard signaled to go to third class. Gandhi refused, English Co passenger supported and guard left. He wrote to the authorities and ensured that they give first and second class ticket to Indians.

In Durban Court: Gandhi did not removed the turban that he was wearing, when he was asked to remove. He wrote to the media about the prejudice.

Walking on the foot path in the President Street: Policeman there pushed and kicked him. Mr. Coates offered to give evidence and advised him to proceed against him, but Gandhi refused it.

Accommodation was not Given: At Grand National Hotel, Gandhiji was not given accommodation in the Grand National Hotel.

Room was given by Johnston’s Family Hotel run by an American at Johannesburg but requested to dine in his room and not come to the dining room. Though the hotel owner had no colour prejudice, he was worried about his European customers. However, the owner of the hotel, who felt ashamed, on obtaining consent from the customers invited Gandhi Ji to the Dining Room.

Whenever he come across injustice, he had never kept quiet, but resisted in different forms like: writing to the Authorities, Resisting with the wrong doers and sometimes excusing and sometimes pitying them for their inability.

Prejudice in Bengal Club in Calcutta

Whenever he come across injustice, he had never kept quiet, but resisted in different forms like: writing to the Authorities, Resisting with the wrong doers and sometimes excusing and sometimes pitying them for their inability.

Injustice to Indians in South Africa:

First, addressed a meeting of Indians at Pretoria and presented them a picture of their conditions in the Transvaal.

“Indian Franchise Bill”, which sought to deprive the Indians of their right to elect members of the Natal Legislative Assembly. He gathered affected people and fought against it.

Honesty in Business: He said in Pretoria to the Merchants that their responsibility to be truthful was all the greater in a foreign land, because the conduct of a few Indians was the measure of that of the millions of their fellow-countrymen.

Encounter with Religious experiences and Conversions:

When Christians and Muslims tried to convert him, after deep thought, he decided that he

Gandhi said: I had long since taught myself to follow the inner voice. God could be realized only through service.

should not think of embracing another religion before he had fully understood his own.

He pointed out deficiencies in every religion including Hinduism.

The study of various religions, Gandhi ji said stimulated his self-introspection and fostered in him the habit of putting into practice whatever appealed to him in his studies.

Gandhi said: I had long since taught myself to **follow the inner voice. God could be realized only through service.**

Petition with Affected persons signatures:

He ensured that signatures are collected against “Indian Franchise Bill” after informing them about it in detail and making them understanding.

On drawing amount from Public Work: He refused to do so. He requested merchants to

retain him for their legal work and drawn from his professional service.

Compromise: Removing turban, when he required to do so as per the rules, on enrolment in the Supreme court. He said, all through my life, the very instance of my truth has taught me to appreciate the beauty of compromise.

Courageous: When Natal, they have decided to start an organization, various names had come before them. They are aware that Conservatives in England are allergic to the word “Congress”. Though they are aware of negativity of it, Gandhi suggested the “Natal Indian Congress”

Conclusion:

Truth is the guiding principle.

He developed and followed the following concepts for clean and capable India:

Understanding the problems and Facts,

Courage

6

Honesty

Honesty in Business

Non-violence,

Promises and Vows,

Self-Analysis,

Self-purification,

Approaching concerned Authorities with an appeal of facts i.e.Truth

Acquaintance with concerned Authorities to achieve the goal

Utilizing Laws

Utilising services of the Media to create awareness.

Address:

P. Maruthi,

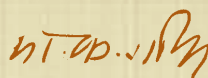
Managing Trustee, Ma Gandhi Trust

Mobile: 09176624283

e-mail:p_maruthi2002@yahoo.co.in

मेरे सपनों का भारत

मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूँगा, जिसमें गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूँगा, जिसमें ऊँच-नीच का कोई भेद न हो। जातियाँ मिलजुल कर रहती हों। ऐसे भारत में अस्पृश्यता व शराब तथा नशीली चीजों के अनिष्टों के लिए कोई स्थान न होगा। उसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलेंगे। सारी दुनिया से हमारा सम्बन्ध शान्ति और भाईचारे का होगा। यह है मेरे सपनों का भारत।



(मोहनदास करमचन्द गांधी)



एक कदम स्वच्छता की ओर

स्वच्छता शपथ

- महात्मा गांधी ने जिस भारत का सपना देखा था उसमें सिर्फ राजनैतिक आजादी ही नहीं थी, बल्कि एक स्वच्छ एवं विकसित देश की कल्पना भी थी।
- महात्मा गांधी ने गुलामी की जंजीरों को तोड़कर माँ भारती को आज़ाद कराया।
- अब हमारा कर्तव्य है कि गंदगी को दूर करके भारत माता की सेवा करें।
- मैं शपथ लेता हूँ कि मैं स्वयं स्वच्छता के प्रति सजग रहूँगा और उसके लिए समय दूँगा।
- हर वर्ष 100 घंटे यानी हर सप्ताह 2 घंटे श्रमदान करके स्वच्छता के इस संकल्प को चरितार्थ करूँगा।
- मैं न गंदगी करूँगा न किसी और को करने दूँगा।
- सबसे पहले मैं स्वयं से, मेरे परिवार से, मेरे मुहल्ले से, मेरे गांव से एवं मेरे कार्यस्थल से शुरुआत करूँगा।
- मैं यह मानता हूँ कि दुनिया के जो भी देश स्वच्छ दिखते हैं उसका कारण यह है कि वहाँ के नागरिक गंदगी नहीं करते और न ही होने देते हैं।
- इस विचार के साथ मैं गाँव-गाँव और गली-गली स्वच्छ भारत मिशन का प्रचार करूँगा।
- मैं आज जो शपथ ले रहा हूँ, वह अन्य 100 व्यक्तियों से भी करवाऊँगा।
- वे भी मेरी तरह स्वच्छता के लिए 100 घंटे दें, इसके लिए प्रयास करूँगा।
- मुझे मालूम है कि स्वच्छता की तरफ बढ़ाया गया मेरा एक कदम पूरे भारत देश को स्वच्छ बनाने में मदद करेगा।



राजघाट समाधि समिति
RAJGHAT SAMADHI COMMITTEE

महात्मा गांधी मार्ग, नई दिल्ली - 110002

MAHATMA GANDHI MARG, NEW DELHI - 110002

Phones : (O) 23273546, 23241716, Telefax No.: 23241716

e-mail : gandhisamadhi@gmail.com, info@gandhisamadhi.com

website : www.gandhisamadhi.com